विषय-सूची

मूल टीका सहित

प्रश्नोत्तर

संक्षिप्त राम-चन्द्रिका

(टीका-भाग)

१. मंगलाचरण

गणेश-वन्दना

मूल—बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारैं सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुःख को।
विपति हरत हठि पद्मिनि के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को॥
दूरि कै कलंक अंक भव-सीस-ससि सम,
राखत है केशोदास दास के वपुष को।
सांकरे की साकरन सनमुख होत तोरे,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख-मुख को॥१॥

शब्दार्थ—बालक—हाथी का बच्चा। मृणालनि—कमल-नाल। कराल-भयंकर। दीह—दीर्घ, बड़ा। पेलि—दबा कर। कलुष—पाप। अंक—चिन्ह। भवसीस—महादेवजी का मस्तक। वपुष—शरीर। सांकरे-संकट। साकरन—जंजीरें। दशमुख—दसों दिशाओं के लोग। गजमुख—गणेशजी। जोवैं—देखते हैं।

भावार्थ—ग्रंथारंभ में कवि केशवदास गणेशजी की स्तुति करते हुए कहते हैं कि जैसे एक हाथी का बच्चा प्रत्येक दशा में कमल-नाल को तोड़ डालता है, उसके लिए उसको कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता, वैसे ही गणेशजी भी कठिन और भयंकर अकाल के बड़े बड़े दुःखों को नष्ट कर देते हैं। वे विपत्तियों को कमलिनी के पत्तों के समान बलपूर्वक खींच कर तोड़ डालते हैं अर्थात् हर लेते हैं और वे पाप को कीचड़ की तरह दबा कर पाताल भेज देते हैं। गणेशजी अपने भक्त के कलंक को दूर करके उसको महादेवजी के मस्तिष्क पर रहने वाले द्वितीया के चन्द्रमा के समान निष्कलंक और वन्दनीय बना देते हैं और वे अपने भक्त के शरीर की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। जब गणेशजी सम्मुख होते हैं अर्थात् भक्त के अनुकूल होते हैं, तब वे संकट की सब जंजीरों को तोड़ डालते हैं अर्थात् अपने भक्त के सब संकटों को दूर कर देते हैं। गणेशजी को इस तरह सब प्रकार से समर्थ देख कर दसों दिशाओं के लोग कृपा के लिए सदा उनके मुख की ओर देखते रहते हैं।

अलंकार—उपमा, परिकरांकुर।
छन्द—मनहरण कवित्त।

सरस्वती-वन्दना

मूल— बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहो धौं उदर कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि-कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई॥
भावी, भूत, वर्तमान जगत बखानत है,
केशौदास केहू ना बखानी काहू पै गई।
वर्णें पति चारिमुख, पूत वर्णें पाँच मुख,
नाती वर्णें षट मुख, तदपि नई-नई॥२॥

शब्दार्थ—बानी—सरस्वती। तपवृद्ध—तपस्वी। भावी—भविष्य

भावार्थ—कवि केशवदास सरस्वती की वन्दना करते हुए कहते
संसार में ऐसी उदार (श्रेष्ठ) मति किसकी है जो संसार की रानी सर
की उदारता का वर्णन कर सके देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, बड़े बड़े ऋषि तथा त
लोग भी जिसकी उदारता की प्रशंसा कर-करके थक गये, पर कोई भी उस
वर्णन करने में सफल न हो सका। कवि केशवदास कहते हैं कि संसार में
स्वती की उदारता का वर्णन भूतकाल में किया गया, वर्तमान समय में कि
जा रहा है तथा भविष्य में भी लोग करेंगे, फिर भी उसकी उदारता का वर्ण
न हुआ और न हो सकेगा। कवि कहता है कि अन्य जनों की तो बात ही छोड़
स्वयं सरस्वती के निकटतम सम्बन्धी भी उसकी उदारता के वर्णन करने में
समर्थ नहीं हैं। सरस्वती के पति (ब्रह्माजी) चार मुख से, पुत्र महादेवजी)
पाँच मुख से, तथा (षट्मुख—स्वामी कार्तिकेय) छः मुख से उसकी उदारता
का वर्णन करते हैं, फिर भी उसकी उदारता नित्य नयी रहती है अर्थात् वे
उसकी उदारता का पूर्ण वर्णन नहीं कर सके। भाव यह है कि जब सरस्वती के
निकटतम सम्बन्धी ही क्रमशः चार, पाँच और छः मुख धारण करके उसकी
उदारता का वर्णन नहीं कर सके, तब अन्य जनों द्वारा तो उसकी उदारता का
वर्णन हो ही कैसे सकता है?

अलंकार—अनुप्रास, यमक, सम्बन्धातिशयोक्ति।
छन्द—मनहरण कवित्त।

राम-वन्दना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।

दरसन देत, जिन्हे दरसन समुझै न,
'नेति नेति' कहैं बेद छाडि ग्रान युक्ति को ।।
जानि यह केशोदास अनुदित राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को ।
रूप देहि ग्रणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ।।३।।

शब्दार्थ—पुरान—सब । पुराण—पुराने । दरसन—दर्शन, शास्त्र । अणिमाहि—अणिमा—वह सिद्धि जिसमें छोटा से छोटा रूप धारण किया जा सकता है । गरिमाहि—गरिमा—वह सिद्धि जिससे भारी से भारी वजन का बना जा सकता है । महिमाहि—महिमा—वह सिद्धि जिसमें बड़ा से बड़ा रूप धारण किया जा सकता है । नेति-नेति—न इति न इति (वह इस प्रकार भी नहीं है ।)

भावार्थ—कवि केशवदास राम-वन्दना करते हुए कहते हैं कि जिस राम को समस्त पुराण और पुराने लोग अन्य सब कथनों को छोड़ कर सब प्रकार से पूर्ण बताते हैं, जिसको दर्शन-शास्त्र के ज्ञाता भी नहीं समझ सकते तथा वेद भी जिसके बारे में और कुछ कथन न करके केवल 'नेति-नेति' कहते हैं, वे राम अपने भक्तों को सगुण रूप में दर्शन देते हैं । केशवदास कवि कहते हैं कि यह सब कुछ जान कर भी मैं दिन-रात राम-राम रटता हूं और पुनरुक्ति (जो एक दोष माना जाता है) की कोई चिन्ता नहीं करता । राम का रूप-चिन्तन ग्रणिमा सिद्धि को, उनका गुण-कथन गरिमा सिद्धि को, उनकी भक्ति महिमा सिद्धि को तथा उनके नाम का जाप मुक्ति को प्रदान करते हैं ।

अलंकार—यमक, लाटानुप्रास, सम्बन्धातिशयोक्ति ।

छन्द—मनहरण कवित्त ।

२. अयोध्यापुरी-वर्णन

मूल— ऊंचे अवास, बहु ध्वज प्रकास ।
सोभा विलास, सोभै अकास ।।१।।

शब्दार्थ—अवास—आवास, घर । सोभा—विलास—शोभा बढ़ाने वाली सुन्दर वस्तुएं । प्रकास—प्रकट करना ।

भावार्थ—अयोध्या नगरी में ऊंचे-ऊंचे घर हैं जिन पर अनेक प्रकार के ध्वज फहरा रहे हैं । सुन्दर सजावट की वस्तुओं ने नगरी की शोभा को और भी अधिक सुन्दर बना दिया है ।

अलंकार—स्वाभावोक्ति ।

मूल— अति सुन्दर अति साधु । थिर न रहत पल आधु ।
परम तपोमय मानि । दण्ड-धारिनी जानि ।।२।।

शब्दार्थ—साधु—सीधी। तपोमय—तपस्विनी। दण्ड—डंडा।

भावार्थ—अयोध्यानगरी के उच्च भवनों पर लगी हुई पताकाएं अत सुन्दर और सीधी हैं, किन्तु वे आधेपल के लिए भी स्थिर नही रहती हैं। (हवा के कारण सदा चलायमान रहती है)। वे पताकाएं तपस्विनी स्त्रियों भांति है, क्योंकि जिस प्रकार तपस्विनियां एक पैर से खड़ी रह कर तप करती है तथा हाथ मे दंड धारण किये रहती हैं, उसी प्रकार ये पताकाएं शम का डंडा धारण किये खड़ी रहती हैं।

अलंकार—विरोधाभास (साधु होने पर भी स्थिर न रहना)

मूल— शुभ द्रोण-गिरि-गण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ।
बहु वायु-वश वारिद बहोरहि अरुभ दामिनि द्युति मनौ॥
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली।
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलत भली॥३॥

शब्दार्थ—गनौ—समझो। वारिद—बादल। बहोरहि—लौटा रही है। प्रताप पावक—प्रताप रूपी अग्नि। किधौं—अथवा। सुदेश—सुन्दर। मेरी करी—मेरे द्वारा बनायी गई (कौशिक की गंगा)। दिवि—आकाश।

भावार्थ—लाल और सफेद रंग की पताकाएं अयोध्या के भवनो पर फहरा रही हैं। यहां लाल पताकाओं के ऊपर उत्प्रेक्षा करते हुए मुनि विश्वामित्र कहते हैं कि ये आकाश मे फहराती ऐसी मालूम होती हैं मानो द्रोणाचल पर्वत के शिखर पर दिव्य जड़ी-बूटियो के प्रकाश चमक रहे हो, अथवा मानो बिजली की ज्योति जो ध्वजा के डंडों मे उलझ गई है, उसी को हवा पुनः बादलों की तरफ लौटा रही हो, अथवा रघुवंशियो के प्रचंड प्रताप की अग्नि ही मानो (पृथ्वी पर न समा सकने के कारण) सुरपुर की ओर गमन कर रही हो। अब विश्वामित्र श्वेत पताकाओ पर कल्पना करते हुए कहते हैं कि ये ऐसी मालूम होती हैं मानो मेरी बनायी हुई गंगा ही आकाश मे इधर-उधर खेल रही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, सम्बन्धातिशयोक्ति और संदेह।

छन्द—हरिगीतिका।

काव्य-सौन्दर्य—पताकाओं के सम्बन्ध मे केशव की सुन्दर कल्पना। अयोध्या नगरी के भवनो की उच्चता इस छन्द मे व्यंजित होती है।

मूल— जीति-जीति कीरति लई, शत्रुन की बहु भांति।
पुर पर बांधी सोहिये, मानो तिनकी पांति॥४॥

भावार्थ—श्वेत पताकाओं पर पुनः उत्प्रेक्षा की गई है। राजा दशरथ ने युद्ध मे अनेक तरह से शत्रुओ को जीत-जीत कर उनकी कीर्तियां रंग सफेद माना जाता है) छीन ली है, मानो वे ही पताका बनकर सुशोभित हो रही हैं।

अलंकार—पुनरुक्ति-प्रकाश, उत्प्रेक्षा ।

छन्द—दोहा ।

मूल—सम सब घर शोभैं, मुनि मन लोभैं, रिपुगण छोभैं, देखि सबै ।
बहु दुन्दुभि बाजैं, जनु घन गाजैं, दिग्गज लाजैं, सुनत जबै ॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़ही, विघन न बढ़ही, जय यश मढ़ही, सकल दिशा ।
सबई सब विधि क्षम, बसत यथाक्रम, देवपुरी सम, दिवस निशा ॥५॥

शब्दार्थ—सम—बराबर ऊँचाई के । छोभैं—डरते हैं, ईर्ष्या करते हैं । श्रुति—वेद । मढ़ई—छा जाते हैं । क्षम—योग्य ।

भावार्थ—अयोध्यानगरी के सब घर समान ऊँचाई के बने हैं और सब समरूप हैं । इन भवनों को देख कर मुनियों का मन भी लुभा जाता है तथा शत्रुओं के हृदय में क्षोभ (खलबली) उत्पन्न होता है अर्थात् वे ऐसे सुन्दर भवनों को देख कर ईर्ष्यावश जलते हैं । नगर में देवालय, राज-मंदिर आदि प्रमुख स्थानों पर नगाड़े बजते हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो बादल गरज रहे हों और उन नगाड़ों के शब्दों को सुनकर दिशाओं के हाथी भी लज्जित होते हैं । नगरी में जहाँ-तहाँ ब्राह्मण लोग वेद पाठ करते हैं जिससे विघ्न नहीं बढ़ने पाते । सम्पूर्ण दिशाएं जय और यश से परिव्याप्त हैं । अयोध्यापुरी के सब निवासी सब प्रकार से योग्य और समर्थ हैं । वे यथोचित रीति से अयोध्या नगरी में इस प्रकार बसे हुए हैं मानो अमरपुरी में देवता बस रहे हों । इस प्रकार अयोध्यापुरी देवपुरी के समान शोभायमान हो रही है ।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा ।

छन्द—त्रिभंगी ।

मूल— कविकुल विद्याधर, सकल कलाधर, राज राज वर वेश बने ।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने ॥
सेनापति बुधजन, मंगलगुरुजन, धर्मराज मन बुद्धि घनी ।
बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुर तरंगिनी शोभमनी ॥६॥

शब्दार्थ—विद्याधर—(१) विद्या के धारण करने वाले अर्थात् विद्वान (२) विद्याधर (देवताओं की एक जाति) । कलाधर—(१) कलाओं के जानकार, (२) चन्द्रमा । राज-राज—(१) श्रेष्ठ क्षत्रिय (२) कुबेर । गणपति—(१) समूह या गण का प्रधान व्यक्ति (अधिकारी) (२) गणेश । कवि—(१) काव्य रचने वाला कवि (२) शुक्र । पशुपति—(१) पशुशाला (घुड़साल, गोशाला आदि) का स्वामी (अधिकारी) (२) महादेव । सुखदायक—(१) सुख पहुँचाने वाले (२) इन्द्र । सूर—(१) शूरवीर (२) सूर्य । सेनापति—(१) नायक, हवलदार आदि (२) षडानन (स्वामी कार्तिकेय) । बुधजन—(१) बुद्धिमान जन (२) बुध, देव गण । मंगल—(१) मांगलिक पाठ करने वाले ब्राह्मण (२) मंगल

[illegible] है । पुष्पों और [illegible] को [illegible] हुई नगर-निवासियों [illegible] ऐसी लगती है मानो उनके [illegible] दिए हैं तो भी उनका वह [illegible] [illegible] [illegible] है । उनका वह [illegible] है सुगन्धित एवं [illegible] [illegible] [illegible] होती है मानो वह [illegible] के द्वारा [illegible] [illegible] ही हो जिनकी [illegible] अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हैं ।

छन्द — छप्पय ।

अलंकार — उत्प्रेक्षा की माला ।

मूल — मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय ।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय ॥
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं ।
श्री फल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी मैं ॥११॥

शब्दार्थ—मूलन—वृक्षों की जड़ें । अधोगति—नीचे की ओर गमन करना । हुताशन—अग्नि । मलिनाइय—मैलापन । दुर्गन—गढ़ । श्री फल—

भावार्थ—अयोध्यापुरी में किसी की अधोगति नहीं है यदि किसी की है भी तो केवल वृक्षों की जड़ों की है । नगरी में कहीं भी मलिनता नहीं है केवल होम की अग्नि से उठे हुए धुएँ की जो मलिनता है । केवल दुर्ग (किले) ही दुर्गम हैं, वहाँ और किसी की दुर्गति नहीं है । वहाँ केवल सरिताएँ ही कुटिल गति वाली हैं, अन्य कोई नहीं है । अयोध्या में श्री फल (धन) की अभिलाषा कोई नहीं करता (क्योंकि सब धन से परिपूर्ण हैं), केवल कवि लोग ही स्त्रियों के कुचों की उपमा देने के लिए श्री फल की कामना करते हैं ।

छन्द— रोला ।

अलंकार—परिसंख्या ।

मूल—
अति चंचल जहँ चल दलै, विधवा बनी न नारि ।
मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्भुत नगर निहारि ॥१२॥

शब्दार्थ—चलदलै—चलदल (पीपल के पत्ते) । विधवा—(१) [illegible] विहीन, (२) धव नाम के वृक्ष से रहित । बनी—वाटिका ।

भावार्थ—अयोध्यापुरी में केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं (कोई [illegible]ति चंचल-प्रकृति का नहीं है) । जहाँ कोई भी स्त्री विधवा (रांड) नहीं है (केवल वाटिका ही धव नाम के वृक्ष से हीन है) । ऐसी अद्भुत नगरी को देखकर ऋषिराज (विश्वामित्रजी) का मन मोहित हो गया ।

छन्द—दोहा ।

अलंकार —परिसंख्या ।

मूल— नागर नगर अपार, महामोह-तम-मित्र-से।
तृष्णा-लता कुठार, लोभ-समुद्र-अगस्त्य-से ॥१३॥

शब्दार्थ—मित्र—सूर्य। कुठार—कुल्हाड़ा। अगस्त्य—एक ऋषि जिन्होंने समुद्र को एक चुल्लू में पी डाला था।

भावार्थ—अयोध्यापुरी के नागरिक सब विद्वान् हैं, वे महामोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान, तृष्णा रूपी लता को काटने के लिए कुल्हाड़े के समान तथा लोभ रूपी समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य के समान हैं।

छन्द—सोरठा।

अलंकार—परम्परित रूपक।

मूल— बिधि के समान हैं बिमानीकृत राजहंस
बिबिध बिबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातौ दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है॥
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति,
छन-दान-प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब बिधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भागीरथ-पथगामी गंगा कैसो जल है ॥१४॥

शब्दार्थ—बिधि—ब्रह्मा। बिमानीकृत—(१) विमान बनाये हुए (२) अधीन किये हुए। राजहंस—(१) हंस पक्षी (२) राजाओं के प्राण। बिबुध—(१) देवता (२) पंडित। दीपति—प्रकाश। दिपति—प्रकाशित होती है। दीपियतु—प्रकाशित हो जाते हैं। सुदक्षिणा—(१) राजा दिलीप की पत्नी (२) अच्छी दक्षिणा। उजागर—प्रसिद्ध। बाहिनी—(१) सेना (२) नदी। छनदानप्रिय—(१) जिसको आनन्द देना प्रिय लगता है (२) जिसको प्रतिक्षण दान देना प्रिय है। अमल—मल-रहित, उज्ज्वल। राजै—राज करते हैं, सुशोभित होते हैं। भागीरथ पथगामी—राजा भागीरथ के पथ पर चलने वाला। कैसो—का सा।

भावार्थ—विभिन्न उपमानों से यहां राजा दशरथ की तुलना की गई है। जैसे ब्रह्मा राजहंसों पर सवारी करते हैं, वैसे ही राजा दशरथ अनेक राजाओं के चित्त पर चढ़े रहते हैं। जैसे सुमेरु पर्वत पर अनेक देवता रहते हैं, वैसे ही राजा दशरथ का दरबार भी अनेक विशिष्ट विद्वानों से युक्त है। राजा दशरथ के यश का प्रकाश इतना अधिक है कि उससे सातों द्वीप प्रकाशमान हो उठे हैं। राजा दशरथ मानों दूसरे दिलीप हैं—राजा दिलीप को अपनी रानी सुदक्षिणा का बल प्राप्त था, इसी प्रकार राजा दशरथ को भी सुदक्षिणा (दान-दक्षिणा)

या था प्राप्त था अर्थात् राजा दशरथ खूब दान करते थे। राजा दशरथ समु
समान हैं, क्योंकि जैसे समुद्र अनेक नदियों का पति है, वैसे ही राजा दशरथ
अनेक वाहिनियों (सेनाओं) के पति हैं। राजा दशरथ सूर्य हैं, क्योंकि
प्रकार सूर्य प्राणिमात्र को आनन्द देता है, वैसे ही राजा दशरथ भी दान
को प्रिय-कार्य समझते हैं। राजा दशरथ सब प्रकार से समर्थ हैं, जैसे रं
अज ने भागीरथ के पथ का अनुगमन किया था, उसी तरह दशरथ भी
पूर्व-पुरुषों की रीति-नीति का अनुसरण करते हैं।

छन्द—मनहरण कवित्त।

अलंकार—मुख्य अलंकार उल्लेख है जिसके अंगीभूत उपमा, रू
संदेह और श्लेष है।

विशेष—यहाँ वैताल द्वारा राजा दशरथ की दानशीलता एवं उदार
का वर्णन कराकर विश्वामित्रजी को यह सूचना दी गई है कि उन्हें निर
लौटना नहीं होगा, मन-चाहा मिल जायगा।

मूल— यद्यपि ईंधन जरि गये अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के पल-पल बढ़त प्रकाश ॥१५॥

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि यद्यपि राजा दशरथ के अरि
ईंधन रूप होकर जल चुके हैं, तथापि प्रताप रूपी अग्नि का प्रकाश प्रतिक्ष
बढ़ता ही जाता है।

छन्द—दोहा।

अलंकार—रूपक से पुष्ट विभावना।

मूल— विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की, गये राज दरबार ॥१६॥

भावार्थ—सरल है।

छन्द—दोहा।

मूल— देखि तिन्हें तब दूर तें, गुदरानो प्रतिहार।
आये विश्वामित्र जू, जनु दूजो करतार ॥१७॥
उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन, ज्यों सुरगुरु सुरराइ ॥१८॥

शब्दार्थ—तिन्हें—उनको (विश्वामित्र को)। गुदरानो—निवेदन किया
प्रतिहार—द्वारपाल। सुरगुरु—बृहस्पति। करतार—ब्रह्मा। सुरराइ—इन्द्र

भावार्थ—सरल है।

छन्द—दोहा।

मूल— राम गये जब ते बन माहीं। राकस बैर करें बहुधा हीं।
राजकुमार हमें नृप दीजे। तौ परिपूरण यज्ञ करीजै ॥१९॥

शब्दार्थ—राम—परशुरामजी। राकस—राक्षस।

भावार्थ—विश्वामित्र रिषि राजा दशरथ से कहते हैं—जब से परशु-रामजी तप करने के लिए बन को चले गये हैं तब से राक्षस लोगों ने मुनियों से र निकालना प्रारम्भ कर दिया है—पहले वे परशुरामजी के डर से सताते न , क्योंकि परशुरामजी आश्रम के निकट ही रहते थे। इसलिए हे राजन्! आप मे अपने राम नामक राजकुमार को दे दीजिए जिससे हमारे यज्ञ की रक्षा । जाय।

मूल— रक्षिवे को यज्ञ कूल बैठ वीर सावधान।
न लागे होम के जहां-तहां सबै विधान॥
भीम भांति ताडका सुभंग लागि कर्न आय।
बान तानि राम पैननारि जानि छाडि जाय॥२०॥

शब्दार्थ—यज्ञ-कूल—यज्ञस्थल के समीप। विधान—क्रिया। होम-हवन। भीम भांति—भयंकर रूप से। भंगलागि करन आय—आकर भंग करने लगी।

भावार्थ—वीर राम और लक्ष्मण यज्ञ की रक्षा करने के लिए यज्ञ-स्थल के समीप सावधान होकर बैठ गये और यज्ञ की क्रियाएं विधि-पूर्वक होने लगीं। यज्ञ के प्रारंभ हो जाने के अनन्तर ताड़का नाम की राक्षसी ने आकर यज्ञ को भयंकर रूप से भंग करना प्रारंभ कर दिया। रामचन्द्रजी ने उसका वध करने के लिए बाण तो चढ़ा लिया, किन्तु उसे स्त्री समझ कर उस पर छोड़ा नहीं, क्योंकि स्त्री पर प्रहार करना वीर-धर्म के विरुद्ध है।

मूल— पूरण यज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र।
धनुष-यज्ञ की शुभ कथा, लागे सुनन विचित्र॥२१॥

छन्द—दोहा।

अलंकार—लाटानुप्रास (यज्ञ और धनुष-यज्ञ में 'यज्ञ' की आवृत्ति के कारण)।

विशेष—जनकपुर से आया हुआ एक ब्राह्मण पथिक विश्वामित्र के यज्ञ में जनकपुर में हो रहे धनुष-यज्ञ एवं सीता-स्वयंवर की कथा सुनाता है। (विश्वामित्रजी यहां उससे यही कथा सुन रहे हैं)।

(३) सीता-स्वयंवर

मूल—खंड-परस को सोभिजै, सभा मध्य को दंड।
मानहुं शेष अशेष धर, धरनहार बरिवंड॥१॥

शब्दार्थ—खंडपरस—महादेव। को दंड—धनुष। शेष—शेष नाग। अशेष—सम्पूर्ण। धर—धरा (पृथ्वी)। धरनहार—धारण करने वाला। बरिवंड—प्रबल।

भावार्थ—सभा के मध्य रखा हुआ शिव-धनुष ऐसा सुशोभित मानो सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने वाला बलशाली शेष नाग ही है

छन्द—दोहा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छा
ईस मनो वसुधा मे सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हा
तामहं केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदा
देवन स्यो जनु देव-सभा शुभ सीय-स्वयंवर देखन आई

शब्दार्थ—मंचन की अवली—सिंहासनो की कतार। ईस—
सुधाधर-मंडल—चन्द्रमा के चारों ओर का घेरा। मंडि—सुशो
जोन्हाई—चादनी। स्यो—सहित।

भावार्थ—स्वयंवर-मंडप मे हाथी दात के बने सुन्दर सिंहास
पंक्ति इस तरह सुशोभित हो रही है मानो ब्रह्मा ने चांदनी से युक्त चन्द्र
को ही पृथ्वी पर सजा कर रख दिया हो। जब सब राजकुमार (स्वयं
आये हुए) उन गजदंत-निर्मित सिंहासनो पर बैठ जाते हैं, तब वह समा
ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो सब देवताओं के सहित वह सभा ही सीता
शुभ स्वयंवर को देखने के लिए आई हो।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

मूल—पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवन्त जग ज्योतिषिन गाये हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिन्धु,
केशव चराचर जे वेदन बताये हैं॥
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौन गुण पाये हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिबे को,
भूपन को रूप धरि विश्व रूप आये हैं॥३॥

शब्दार्थ—मणिपन्नग—बड़े-बड़े सर्प शेष, वासुकी आदि। पतंग—
पक्षी। पितृ—पितृ लोक के निवासी। ज्योतिवन्त—प्रकाशी, चन्द्र, सूर्य आ
अंगी—शरीरधारी। अनंगी—अशरीरी। विश्व रूप—विश्व भर के रू
प्राणी।

भावार्थ—सीता-स्वयंवर की शोभा को देखने के लिए कौन-कौन
है, इसका वर्णन करते हुए केशवदास कहते हैं कि जितने भी ज्योतिधारी
जिनका कि उल्लेख ज्योतिषियों ने किया है—जैसे अग्नि, पवन, शेष नाग, वासुकि

सूर्य, पितृलोक के निवासी आदि—ये सब तथा राक्षस गण, प्रसिद्ध सिद्ध लोग, तीर्थों के सहित समुद्र तथा चर और अचर जितने भी वेदों ने बताये हैं, तथा सब देवता, ब्रह्मा एवं शरीरधारी और अशरीरी सब, जिनके गुणों का वर्णन सामर्थ्य के बाहर है। ये सब राजाओं का रूप धारण करके सीता-स्वयंवर को देखने के लिए आये हैं।

छन्द—घनाक्षरी।

अलंकार—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास और लाटानुप्रास।

मूल—दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
कत भाड़ भये उठि आसन तें, कहि केशव शंभु सरासन को छ्वै॥
पद काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आँगुर हू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आये ह्वै बीर चले बनिता ह्वै॥४॥

शब्दार्थ—किन मातु गई च्वै—माता का गर्भपात क्यों नहीं हो गया (ऐसे शक्तिहीनों को जन्म देने से लाभ क्या था?) भाड़ भये—अपने हाथों अपनी धूल कराई। नवायो—झुकाया। भो—हुआ।

प्रसंग—सीता-स्वयंवर में शिव-धनुष को उठाकर चढ़ाने के लिए अनेक वीर कहलाने वालों ने प्रयत्न किया। किन्तु धनुष का चढ़ाना तो दूर, वह अपने स्थान तक से न खिगा। सब अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। इसी का वर्णन इस सवैये में किया गया है।

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि दिक्पालों, भूपालों और लोक-पालों की माताओं का गर्भ-पात ही क्यों नहीं हो गया। उन्होंने अपने आसन से उठकर अपनी अप्रतिष्ठा क्यों कराई? वे शिव-धनुष को केवल छू कर ही रह गये, किसी ने भी न उसे चढ़ाया, न झुकाया और न किसी ने उसे दो अंगुल भर भी उठाया (सरकाया)। ऐसा करने से न तो उनके किसी स्वार्थ की ही सिद्धि हुई और न उन्हें कोई परमार्थ-लाभ ही हुआ। वे आये तो थे वीर बनकर, किन्तु चले गये वे स्त्री के समान कायर बनकर।

छन्द—मल्लिका सवैया।

अलंकार—तृतीय विषम।

मूल—काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्योत॥५॥

शब्दार्थ—सगुन—शकुन। मित्र—सूर्य। उद्योत—उदय, उगना।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि ऐसा शकुन न किसी को हुआ और न होता ही है जैसा कि राम को हुआ। राम ने ज्योंही मुनि-सहित जनकपुर में प्रवेश किया, त्योंही सूर्य ही उदय हुआ।

छन्द— दोहा ।

विशेष—शुभ कार्य में सूर्योदय श्रेष्ठ शकुन समझा जाता है

मूल—

कनु राजन सूरज मदन लरे ।
जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे ॥
चितवत चित कुमुदिनि त्रसै ।
चोर चकोर चिता-सी लसै ॥६॥

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं कि यह लाल सूर्य आकाश में दीप्यमान हो रहा है मानो यह लक्ष्मण के प्रेम से भरा हुआ हो। इस को देखकर कुमुदिनी अपने चित्त में भय खाती है और चोर और चकोर को चिता के समान ही प्रतीत हो रहा है।

विशेष—सूर्योदय होने पर कुमुदिनी बन्द हो जाती है, चोर चोरी नहीं कर पाता और चकोर चन्द्रमा की किरणों का पान नहीं कर सकता—इसलिए सूर्य इनके लिए दुःखदाई कहा गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा ।

मूल—

अरुन गात अति प्रात पद्मिनी-प्राणनाथ भय ।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय ॥
परि पूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगल-घट ।
किधौं शक्र को छत्र मढ़्यो माणिक-मयूख-पट ॥
कै श्रोणित-कलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥७॥

शब्दार्थ—अरुणगात—लाल रंगवाला। पद्मिनि-प्राणनाथ—सूर्य। भय—हुए, होने पर। कोकनद—लाल कमल। कोक—चकवा। शक्र—इन्द्र। माणिक-मयूख-पट—माणिक्य की किरणों से बना हुआ वस्त्र। कै-अथवा। श्रोणित-कलित—रक्त से भरा हुआ। किल—निश्चयपूर्वक। कापालिक—एक तांत्रिक साधु जो मद्य-मांस सब कुछ खाते हैं और काली या भैरव को चढ़ाते हैं। ये प्रायः मनुष्य के कपाल में भोजन-पान करते हैं, इसलिए ये कापालिक कहलाते हैं। लाल—माणिक। दिग्भामिनी—दिशा रूपी स्त्री। भाल—ललाट।

भावार्थ—प्रातःकाल सूर्य लाल रंग का होकर उदय हुआ है। वह ऐसा मालूम होता है मानो कमल और चकवान का प्रेम जो उसके हृदय में भरा हुआ है, बाहर झलक रहा हो, अथवा यह कोई मंगल-घट है जो चारों ओर सिन्दूर से रंगा हुआ हो, अथवा यह इन्द्र का छत्र है जो माणिक्य की किरणों से बने वस्त्र से बनाया गया हो, अथवा निश्चय-पूर्वक यह काल रूपी कापालिक

हाथ में रक्त से भरा मस्तक है जिसकी कि बलि चढाने के लिए उसने अभी दा ही अथवा यह पूर्व रूपी दिशा स्त्री के ललाट की लालमणि हो।

छन्द—षट्पद।

अलंकार—रूपक और संदेह से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

र— पसरे कर कुमुदिनि काज मनो।
किधौं पद्मिनि को सुख देन घनो॥
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे।
जिय जानि चकोर फंदानि ठगे॥८॥

शब्दार्थ—कर—किरण। कुमुदिनि-काज—कुमुदिनी को पकड़ने के ए। ऋक्ष-नक्षत्र। किधौं—अथवा।

भावार्थ—(प्रात काल उदय हुए सूर्य पर ही कल्पना चल रही है)—र्य की फैली हुई किरणें मानो सूर्य के हाथ हैं जो कुमुदिनी को पकड़ने के लिए से हुए हैं, अथवा ये कमलिनी को अपने स्पर्श से अत्यधिक सुख पहुंचाती के ए फैले हुए हैं। तारे भी मानो इसी डर से भाग गये हैं कि कहीं वे सूर्य की करणों के फंदे में न फंस जायं। चकोर पक्षी भी इन किरणों को एक फन्दा मझ कर ठगा-सा रह गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और सन्देह।

ल— व्योम में मुनि! देखिए अति लाल-श्री-मुख साजे हो।
सिन्धु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजही।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई॥९॥

शब्दार्थ—व्योम—आकाश। लाल श्रीमुख—सूर्य जिसका रंग लाल है। द्मराग—माणिक। दिवि—आकाश। सूर-बाजि—सूर्य के रथ के जुते घोड़े। खुरी—सुम। तिक्षता—तीक्ष्णता। हई—चूर्ण की हुई।

भावार्थ—रामचन्द्रजी विश्वामित्रजी से कहते हैं कि हे मुनि! देखिए लाल रंगवाला सूर्य आकाश में कैसी शोभा दे रहा है, वह ऐसा मालूम होता है मानो समुद्र में वाडवानल की ज्वाला का समूह ही एकत्र हो कर विराज रहा हो। अथवा सूर्य के रथ के घोड़ों के अति तीक्ष्ण सुमों से चूर्ण की हुई पद्मराग-मणि की धूल से सारा आकाश भर सा गया हो।

अलंकार—संदेह और उत्प्रेक्षा।

मूल— चढ़यो गगन-तरु धाइ, दिनकर बानर अरुण मुख।
कीन्हों झुकि भहराय, सकल तारका कुसुम बिन॥१०॥

शब्दार्थ—अरुनमुख—लाल मुख वाला। झुकि-खीझकर, क्रुद्ध हो कर। भहराय-हिला कर। तारका-तारे। कुसुम-फूल।

भावार्थ—सूर्य की भाग मुसकाता बन्दर आकाश की वृक्ष प
कर चढ़ गया है और क्रुद्ध होकर उस वृक्ष को हिला कर उसे समस्त तारों
पुष्पों से रहित कर डाला है।

अलंकार—रूपक।

छन्द—सोरठा।

विशेष—कवि की उत्कृष्ट कल्पना दर्शनीय है।

मूल— जहीं वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवन्त बिन, संपति सोभा साज ॥११॥

शब्दार्थ—जहीं—ज्योंही। वारुणी—(१) पश्चिम दिशा (२
द्विजराज—(१) चन्द्रमा (२) ब्राह्मण। भगवन्त—(१) सूर्य (२) भगवा

भावार्थ—लक्ष्मण कहते हैं कि ज्यों ही चन्द्रमा पश्चिम दिशा
की तनिक भी इच्छा करता है, त्योंही उसे सूर्य बिना सम्पत्ति और
कर देता है।

श्लेष से दूसरा अर्थ—ज्यों ही कोई ब्राह्मण जरा भी मदिरा क
करता है, त्यों ही भगवान उसकी सब सम्पत्ति और शोभा हर लेते हैं।

अलंकार—श्लेष।

मूल— चहुं भाग बाग तड़ाग। अब देखिए बड़ भाग।
फल फूल सों संयुक्त। अलि यों रमै जनु मुक्त ॥१२॥

शब्दार्थ—चहुं भाग—चौ तरफ।। बड़भाग—भाग्यशाली। मु
(१) स्वतंत्र (२) स्वच्छन्दचारी साधु। जनु—मानो।

भावार्थ—लक्ष्मण रामचन्द्रजी से कहते हैं कि हे भाग्यशाली!
देखिए कि जनकपुर के चौतरफ कितने बाग-बगीचे और सरोवर हैं।
बाग-बगीचे फल-फूलों से युक्त हैं, इनमें भौंरे इस प्रकार स्वतंत्रता-पूर्वक विच
करते हैं मानो वे स्वच्छन्दचारी साधु हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल— तेन नगरि ना नागरी, प्रतिपद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जहं, प्रगट पयोधर पीन ॥१३॥

विशेष—प्रस्तुत छन्द श्लेष अलंकार का एक श्रेष्ठ उदाहरण है
छन्द के दो अर्थ हैं—एक नगरी के पक्ष में तथा दूसरा नागरी के पक्ष में
लिए समझने के लिए हम दोनों के शब्दार्थ तथा भावार्थ पृथक्-
लिखते हैं।

(१) नगरी के पक्ष में—

शब्दार्थ—प्रतिपद—पद-पद पर। हंसक (हंस+क)—हंस और ज
जलज—कमल। पयोधर—जलाशय, कूप आदि। पीन—बड़े-बड़े।

अन्वय—है नगरी न, जो प्रतिपद हंस और क हीन हो, जहं जलजहार भित न, यहं प्रगट पीन पयोधर न।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं कि जनक के देश में ऐसी कोई नगरी ी है जो पग-पग पर हंसों, जल और कमल-समूह से भरे हुए बड़े-बड़े सरो- ी से हीन हो अर्थात् जनक के देश भर में सब नगर बड़े-बड़े जलाशयों से परि- र्ण हैं जिनमें हंस और कमल अधिकता से पाये जाते हैं।

) नागरी के पक्ष में—

शब्दार्थ—नागरी—चतुर स्त्री। प्रतिपद—हर एक पैर में। हंसक—बिछुआ। जज—मोती। पयोधर—कुच। पीन—पुष्ट।

अन्वय—है नागरी न, जो प्रतिपद हंसक—हीन हो, जहां जलजहार भित न, जिनके पीन पयोधर प्रगट न।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं कि जनक के देश में ऐसी कोई नागरी ी है जिसके हरेक मे, बिछुआ (नूपुर) न हों, जिसके ऊंचे उठे उरोजों पर ती की मालाएं सुशोभित न हों अर्थात् जनक के देश की सब स्त्रियां सुधवा, -पुष्ट और सम्पन्न हैं।

अलंकार—श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति अनुप्रास।

न— सातहु दीपन के अवनि पति हार रहे जिय में जबज ाने।
बीस बिसे व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु ताने॥
शोक की आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूली उठे तरु पुण्य पुराने॥१४॥

शब्दार्थ—अवनिपति—राजा। बीसबिसे—निश्चय। व्रत—प्रतिज्ञा। नश्याम—(१) रामचन्द्रजी (२) काले बादल। बिहाने—प्रातःकाल। पुराने ट पुण्य—पूर्वकालीन पुण्य रूपी तरु।

भावार्थ—जब राजा जनक ने अपने हृदय में यह जान लिया कि सातों पों के राजा जोर लगा कर हार गये हैं (कोई भी धनुष उठाने में समर्थ नहीं आ) और अब तो मेरी प्रतिज्ञा निश्चय पूर्वक भंग हो गई, अब धनुष को कौन ढा सकता है। इस प्रकार राजा जनक के पूर्ण रूप से निराश हो जाने पर ब उनके हृदय में शोक की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तब सहसा प्रातःकाल समय बादल के समान श्याम रंग वाले रामचन्द्रजी जनकपुर में आ गये। नके आगमन के प्रभाव के कारण जानकी, जनक आदि के पुराने पुण्य के वृक्ष तः प्रफुल्लित हो उठे।

छन्द—मालती सवैया।

अलंकार—समाधि, परिकरांकुर, रूपक।

विशेष—'घनश्याम' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग बहुत ही फबता हुआ है।

मूल— चाहु गए रिसिराजहि लीने। मुख्य सतानंद सिर ढारे
देखि दुरै भये पायनि लीने। आसिष सीसवार्यो यों देवे॥१॥

शब्दार्थ—रिसिराजहि=विश्वामित्र को। लि-सतानन्द
राजहि लीने—राजा जनक को साथ लेकर। सीसवार्यो जैं—सिर
(प्राचीन काल में सिर सूँघ कर आशीर्वाद देने की प्रथा थी)।

भावार्थ—विश्वामित्रजी का आगमन सुनकर सतानन्द
जनक तथा मुख्य ब्राह्मण सतानन्द जी, जो उनके पुरोहित-कार्य के लि
साथ लेकर विश्वामित्रजी की अगवानी करने आ गए। विश्वामित्र
कर जनक और सतानन्द दोनों उनके चरणों में गिर पड़े। विश्वामित्रजी
को उठाकर तथा सिर सूँघ कर आशीर्वाद दिया (अथवा इसका अर्थ हो
सकता है कि राम और लक्ष्मण ने शतानन्द और सतानन्द के चरणों
कर उन्हें प्रणाम किया और उन्होंने उनका सिर सूँघ कर उनको
दिया।)

अलंकार—स्वभावोक्ति और परिवृत्त।

मूल— केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति बेलि बई है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छः सातक आठक सों भव तीनिहुँ लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राज सिरी परिपूरणता शुभ योग मई है॥११॥

शब्दार्थ—कीरति बेलि—कीर्ति-लता। बई है—लगाई है। केशव—
यहां रामचन्द्रजी। दान-कृपान-विधानन सों—दान एवं युद्ध के द्वारा।
लयी है—अधिकार कर लिया है। अंग छः—वेद के छः अंग (शिक्षा,
व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द)। अंग सातक—राज्य के सात
(राजा, मन्त्री, निधि, देश, दुर्ग, धन और सेना)। अंग आठक—योग के
अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सम
भव-उत्पन्न। वेदत्रयी—तीन वेद (रिक्, यजुः और साम)। राजसिरी—राज्य
शुभ योग मई है—अच्छा जोड़ा मिल गया है।

भावार्थ—विश्वामित्र मुनि रामचन्द्रजी को संबोधन करते हुए कहते
हे केशव! ये मिथिला के अधिपति राजा जनक हैं जिनकी कीर्ति-लता सं
में फैली हुई है, जिन्होंने दान और वीरता द्वारा सारी पृथ्वी पर अधिकार
लिया है, तथा जिन्होंने वेद के छः, राज्य के सात और योग के आठ अंगों
उत्पन्न हुई सिद्धि से तीनों लोकों में कार्य-सफलता प्राप्त करली है। भाव यह
कि जो तीनों लोकों में यशस्वी बन कर सुख भोगते हैं। राजा जनक में वेद
और राज्यश्री दोनों की पूर्णता का अच्छा योग देखा जाता है अर्थात् ये उच्च
कोटि के शास्त्रों के भी जानकार हैं और राजनीति में भी अति निपुण हैं।

अलंकार—'कीरति-बेलि' में रूपक।

छन्द—मालती सवैया।

मूल— जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हो उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥१७॥

शब्दार्थ—मेलि-रख कर। वर्ण-जाति, रंग।

भावार्थ—राजा जनक विश्वामित्रजी का परिचय दे रहे हैं—ये वे ही विश्वामित्र हैं जिन्होंने अपने शरीर रूपी सोने को तपस्या की अग्नि में डाल कर उत्तम रंग वाला बनाया है। भाव यह है कि जो तपस्या के द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण (उत्तम वर्ण वाले) बन गये हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

छन्द—सोरठा।

मूल— जन राजवन्त। जग योगवन्त।
तिनको उदोत। केहि भांति होत ॥१८॥

शब्दार्थ—जन-जनक। उदोत-उदय।

भावार्थ—यह सुन कर कि राजा जनक योगी भी हैं, लक्ष्मण को संदेह हो गया, इसलिए वे पूछते हैं कि जो व्यक्ति राजा हो, वह योगी कैसे हो सकता है क्योंकि ये दोनों कार्य—योग-साधना और राज्य-संचालन—परस्पर विरुद्ध हैं। उनका अभ्युदय हो ही कैसे सकता है?

मूल—सब क्षत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशिवासर केशव साधन को तम तेज भगै॥
भव भूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै ॥१९॥

शब्दार्थ—बिजना-पंखा। बात-हवा। डगै-हिलती है। तम तेज-घना अंधकार। भवभूषण-राख (दीपक के गुल की भस्म)। मसी=कालिख, काजल।

भावार्थ—राम लक्ष्मण की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं—हे लक्ष्मण! निमि-वंश में अद्भुत ज्योति जगी हुई है, जिसकी आभा जल और थल सब जगह व्याप्त है। वह ज्योति ऐसी है कि समस्त क्षत्रियों में से किसी ने भी उसको छू तक नहीं पाया, और न वह ज्योति पंखे की हवा से डगमगाती है। वह ज्योति सदा एकसी रहती है, न घटती है न बढ़ती है, उसके प्रकाश से लोकों का घना अन्धकार भाग जाता है। वह ज्योति कभी राख से नहीं ढकती (उसमें कभी गुल नहीं आता)। न उस ज्योति से कहीं कालिमा लगती है। भाव यह है कि निमिवंश की ज्योति ज्ञान-ज्योति है, जिसको सामाजिक विभूति नहीं ढकने पाती, न जिससे अहंकार रूपी कालिख (काजल) पैदा होती है—वह सदा स्वच्छ और निर्मल रहती है।

भावार्थ—राजा जनक विश्वामित्र जी से अपनी प्रशंसा सुन कर विश्वा-मित्र की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिन विश्वामित्रजी ने एक पृथक् रचना कर डाली, उनके चित्त की चतुरता का वर्णन करना कठिन है।

छन्द—दोहा।

ये सुत कौन के सोभहिं साजे? सुन्दर श्यामल गौर विराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला विमला पति कोऊ ॥२३॥

शब्दार्थ—सोदर—सहोदर, सगे भाई। कमलापति—विष्णु। विमला-पति—ब्रह्मा।

भावार्थ—राजा जनक विश्वामित्रजी से राम-लक्ष्मण का परिचय पूछने के लिए प्रश्न करते हैं—ये शोभाशाली सांवले और गोरे शरीर वाले दोनों किस के पुत्र हैं? मुझे तो ऐसा लगता है कि या तो ये दोनों सगे भाई हैं या ये विष्णु और ब्रह्मा के अवतार हों (क्योंकि ये वैसे ही तेजस्वी और शोभाशाली हैं)।

अलंकार—सन्देह।

सुन्दर श्यामल राम सुजानो, गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ, सूरज के कुल-मंडन दोऊ ॥२४॥

शब्दार्थ—सूरज के कुल मंडन—दोनों सूर्यकुल की शोभा बढ़ाने वाले हैं।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—हेतु।

छन्द—चौपाई।

नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥२५॥

शब्दार्थ—नृपमणि—राजाओं में शिरोमणि। ललित—सुन्दर।

भावार्थ—सरल है।

दानिन के सील परदान के प्रहारी दिन।
दानवारि ज्यों निदान देखिए सुभाव के।
दीप दीपहू के अवनीपन के अवनीप।
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के॥
आनन्द के कन्द सुर पालक से बालक ये,
परदार प्रिय साधु मन बच काय के।
देह धर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥२६॥

शब्दार्थ—क्षत्रिन के सीस—क्षत्रियों के सिर मसलने वाले हैं। दा॰
के प्रसारी—शत्रुओं से दंड का दान लेने वाले। दिन—प्रतिदिन। रूपवा॰
(दानव मर्दि) विष्णु। विचार—ध्यान। छत्रीद—राजा। इंद—इन्द्र
तरदार—मदारी, पृथ्वी।

भावार्थ—विश्वामित्र राजा जनक को राम लक्ष्मण का परिचय दे
हैं—ये राजकुमार अयोध्या-नरेश राजा दशरथ के पुत्र हैं जो क्षिति, क्ष
जैसे क्षत्रियों के सिर मसलने वाले हैं, जो सदैव शत्रुओं से दंड लेकर दान
वाले हैं, जो विचारपूर्वक देखने से विष्णु के स्वभाव वाले हैं, जो समस्त
के राजाओं के भी राजा हैं, जो राजा पृथु के समान पराक्रमी हैं—ऐसे ऐसे
भी जो ब्राह्मण और गाय के दास हैं, जो आनन्द रूपी जल के बरसाने व
बादल हैं। ये बालक देवताओं के पालक इन्द्र के समान तेजस्वी हैं, भक्त
वत्सल हैं। ये मन, वचन, कर्म से शुद्ध हैं। ये देहधारी हैं पर विदेह समान

छन्द—घनाक्षरी।

अलंकार—विरोधाभास।

विशेष—ध्वनि से विश्वामित्र ने यह बतला दिया है कि ये विष्णु
अवतार हैं।

मूल—

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यो॥
रिषि, है वह मंदिर माझ मंगाऊँ।
गहि ल्यावहि, हौं जन-यूथ बुलाऊँ॥२७॥

शब्दार्थ—शरासन—धनुष। लेख्यो—समझा। गहि ल्यावहि—
लायेंगे। जन-यूथ—सेवकों के समूह को।

भावार्थ—विश्वामित्र राजा जनक से कहते हैं कि राम उस धनु
देखना चाहते हैं जिसको अन्य राजाओं ने कठिन समझ रखा है। उत्तर में
जनक कहते हैं—हे ऋषिराज! वह धनुष महल के भीतर रखा हुआ है।
सभी सेवकों के समूह को बुलाकर आदेश देता हूँ, वे उसे यहां उठा लायें
(इसका अर्थ यह भी हो सकता है—राम उसे उठा लायेंगे या मैं उसे ला
लिए अपने सेवकों को बुलाऊँ?)

मूल—

वज्र तें कठोर है, कैलाश तें विशाल, काल
दंड तें कराल, सब काल-काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब,
छोड़ चन्द्रचूड़ एक और को चढ़ावई॥
पन्नग प्रचंडपति प्रभु को पनच पीन।
पर्वतारि-पर्वत-प्रभा न मान पावई।

विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्याइई ॥२८॥

शब्दार्थ—काल-दंड तें—काल के डंडे से भी। कराल—भयंकर। काल-काल—काल का भी काल। चन्द्रचूड़—महादेव। पन्नग-प्रचंडपति—सर्पराज वासुकी। पनच—प्रत्यंचा, डोरी। पीन—मोटी, पुष्ट। पर्वतारि—इन्द्र। दैत्य-प्रभा—दैत्य। मान—भारीपन का अनुमान। विनायक—गणेशजी।

भावार्थ—राजा जनक धनुष के बारे में विश्वामित्रजी से कहते हैं—जो धनुष वज्र से भी अधिक कठोर है, जो कैलाश से भी अधिक बड़ा है, जो काल-दंड से भी अधिक भयंकर है, जिसे सब लोग काल का भी काल कहते हैं और जिस को देख कर त्रिलोक के देव भी हार मान गये तथा जिसको शिवजी के अतिरिक्त दूसरा कोई चढ़ा नहीं सकता, प्रचंड सर्पराज वासुकी जिसमें प्रत्यंचा लगी है, इन्द्र तथा दैत्य लोग भी जिसके भारी-पन का अनुमान नहीं लगा सके, यहां तक कि अकेले गणेशजी भी उसे उठा कर नहीं ला सकते। ऐसे पिनाक को—शिव-धनुष को—कमल के समान कोमल हाथों वाले रामचन्द्रजी कैसे उठा लायेंगे ?

छन्द—मनहरण कवित्त।

अलंकार—'कोमल कमल पाणि' में वाचक लुप्तोपमा।

मूल— सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिए यहि बार॥
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक-लोक बढ़ाव ॥२९॥

भावार्थ—राजा जनक के वचनों को सुन कर विश्वामित्रजी राम को आशीर्वादात्मक आज्ञा देते हैं—हे कुमार रामचन्द्रजी! मेरी आज्ञा सुनो। तुम इसी समय जाकर धनुष लाओ। फिर उसको जल्दी से चढ़ा कर सब लोकों में अपना यश बढ़ाओ।

मूल— रामचन्द्र कटि सों पटु बाँध्यो।
लीलयैव हर को धनु साध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सों छ्वै।
फूल मूल जिमि टूक कर्‌यो द्वै ॥३०॥

शब्दार्थ—पटु—कमरबन्दा। लीलयैव—सहज ही में। साध्यो—चढ़ाया। फूलमूल—फूल की डंडी के समान। नेकु—किंचित्। कर-पल्लव—पत्ते के समान कोमल हाथ। हर को धनु—शिव-धनुष को। नेकु—जरा सा।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—विभावना से पुष्ट पूर्णोपमा।

मूल— उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण तें गुणवन्त कियो सुख केशव संत अनन्तन दीनो॥

२८४६

श्वामित्र के प्रचंड वचनों का पालन करके (उनकी बात रख कर), महादेव को
धना देकर, विष्णु को यह बोध दे कर कि आप की इच्छा के अनुसार संसार
। सब कार्य हो रहा है, अभी परशुराम के क्रोध को भड़का कर, स्वर्ग-निवा-
यों के कार्य में बाधा उपस्थित कर अर्थात् उन्हें चौंका कर, क्योंकि रिषि की
त्रियों को मुक्ति दिला कर वह धनुर्भङ्ग शब्द समस्त ब्रह्मांड को बेध कर
ससे भी परे अन्तरिक्ष में चला गया।

अलंकार—सहोक्ति।

मूल—

सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल ॥१३॥

भावार्थ—शिव-धनुष के भंग होने के उपरान्त सीता ने रामचन्द्रजी को
स्वच्छ कमलों की माला पहिनाई। वह माला ऐसी प्रतीत होती थी मानों वह
ब राजाओं की हृदयावली ही हो।

छन्द—दोहा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—

पठई तब ही लगन लिखि, अवधपुरी सब बात।
राजा दशरथ सुनत ही, चाल्यौ चली बरात ॥१४॥

आये दशरथ बरात सजे, दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
चाल्यौ दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरनि कौन गने ॥१५॥

शब्दार्थ—चाल्यौ—चार। गयन्दनि—हाथी।

भावार्थ—सरल है।

मूल—

बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभ निवारण॥
भारद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि।
विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव पुनि॥
अब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति, तहँ वशिष्ठ पूजत कलस।
शुभ शतानन्द मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ॥१६॥

शब्दार्थ—मागध—वंश-विरद वर्णन करने वाले। सूत—स्तुति करने
वाले। विद्याधर—विद्वान। चारण—वंशावली बताने वाले भाट। सिद्ध—
सिद्धि-प्राप्त लोग। अशुभ-निवारण—अनिष्ट दूर करने वाले, सब प्रकार की
बाधाओं का निवारण करने वाले। चित्रमति—विचित्र बुद्धि वाले। निष्ठमति—
अचल बुद्धि वाले। शाखोच्चार—विवाह-समय में वर-वधू की वंशावली तथा
गोत्र आदि का परिचय।

भावार्थ—सरल है।

के धनुष को 'रा' (म ने तोड़ा है) पर, 'रा' अक्षर मात्र के उच्चारण से परशु-रामजी ने रावण समझा और अति क्रुद्ध होकर वामदेव की बात काट कर बीच ही में बोल उठे।

मूल— बर बान-सिखीन असेस समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरि हौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहि की भरि हौं॥
भल भूंजि कै राख सुखे करकै,
दुख दीरघ देवन को हरि हौं।
सितकंठ के कंठन को कठुला,
दस कंठ के कंठन को करि हौं॥५॥

शब्दार्थ—बान-सिखीन—अग्नि-बाणों से। असेस—सम्पूर्ण। सखा-मित्र (परशुराम अपने कुठार को 'सखा' शब्द से संबोधन कर रहे हैं)। सुख ही-सहज में। औटि—पिघला कर। कलंकित कै—कलंकी रावण की। कलंकहि की पंक—सोने की कीचड़। भल—अच्छी तरह। सितकंठ—महादेव। कंठ-गर्दन। कठुला—माला। दसकंठ—रावण।

संदर्भ—परशुरामजी अपने कुठार को 'सखा' शब्द से संबोधन करके कहते हैं कि हे मित्र! रावण यद्यपि तुम्हारे लिए एक तुच्छ बलि है, तथापि वह दुष्ट है, शिव-धनुष तोड़ कर उसने बड़ा भारी अपराध किया है, इसलिए उसे मारना ही पड़ेगा।

भावार्थ—हे मित्र कुठार! मुझे लंका पहुंचने में कोई कष्ट न होगा, मैं अपने अग्नि-बाणों से सारे समुद्र को सुखा दूंगा और उस पार चला जाऊंगा। मैं उस कलंकी की लंका को पिघला कर समुद्र को सोने की कीचड़ से भर दूंगा। फिर लंका को अच्छी तरह जला कर सहज ही में मैं राख कर दूंगा और देवताओं के दीर्घ दुःख को दूर कर दूंगा। मैं रावण के दसों मस्तकों को काट कर माला बनाऊंगा और उसे महादेवजी के गले में पहना दूंगा।

अलंकार—अनुप्रास।
छन्द—सवैया।

मूल— परशुराम—यह कौन सो दल देखिए?
वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिए।
परशुराम—कहि कौन राम, न जानियो।
वामदेव—शर ताड़का जिन मारयो॥६॥

शब्दार्थ—दल—सेना। लेखिए—समझिए। शर—बाण से।

अलंकार—मुद्रोत्तर ('यर ताड़का जिन मारियो' में छ्द्म कारण)।

मूल—

परशुराम—ताड़का संहारी, तिय न विचारी,
कौन बड़ाई ताहि हनै ?
वामदेव—मारीच हुते संग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गनै ?
करि क्रतु रखवारी गुरु सुखकारी
गौतम की तिय शुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो, हर-धनु खंड्यो
सीय स्वयंवर माझ बरी ॥७॥

शब्दार्थ—तिय न विचारी—यह भी विचार नहीं किया कि है। हनै—मारने में। हुते—था। क्रतु—यज्ञ। गौतम की अहल्या। मंड्यो—सुशोभित किया। हर-धनु—शिव-धनुष। खंड्यो—किया। बरी—विवाह किया।

भावार्थ—वामदेव के यह कहने पर कि वह राम जिसने ताड़ राक्षसी को बाण से मार दिया है, परशुराम वामदेव से कहते हैं कि एक स्त्री के मारने में क्या बड़ाई मिली (एक स्त्री को मार कर क्या क का भागी बन सकता है ?)। इस प्रश्न के उत्तर में वामदेव कहते हैं कि अकेली नहीं थी, उसके साथ मारीच तथा अन्य बलवान दुष्ट राक्षसों का था। साथ में सुबाहु भी था जो अपने सामने किसी को कुछ भी नहीं स था। राम ने यज्ञ की रक्षा कर के अपने गुरु विश्वामित्र को सुख पहुं उन्होंने मार्ग में पड़ी गौतम रिषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार किया (शा कर उसको शिला से सुन्दरी बनाया)। उन्होंने रघुकुल की शोभा बढ़ाई है। मेकर अपने कृत्यों से अपने कुल को उजागर कर दिया है)। उन्हीं रा शिव-धनुष को भंग कर स्वयंवर में सीता का बरण किया है।

अलंकार—मुद्रोत्तर।

मूल—

हर हू हौ तो दंड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरसिसु नष्ट ॥८॥

भावार्थ—वामदेव द्वारा शिव-धनुष का राम के द्वारा तोड़ा जाना कर परशुरामजी को बड़ा आश्चर्य हो रहा है, अतः वे कहते हैं कि इस काल महिमा को तो देखो—जिस धनुष को चढ़ाने में स्वयं महादेवजी को भी दो तक कष्ट होता था, उसको एक मनुष्य के बच्चे ने तोड़ डाला।

अलंकार—असंभव।

छन्द—दोहा।

मूल— बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजिस रत्थहि ।
बान की वायु उड़ाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहि ।।
रामहिं बाम समेत पठैवन, कोप के भार मे भूंजौं भरत्थहि ।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ, तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहि ।।९।।

शब्दार्थ—बोरौं—डुबो दूंगा । बारन—हाथी । बाजि—घोड़े । लच्छन—लक्ष्मण । लच्छ करौं—निशाना बनाऊंगा । अरिहा—शत्रुघ्न । बाम—स्त्री । रघुनाथ—राम ।

भावार्थ—परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध होकर वामदेव से कहते हैं—आज हाथी, घोड़े और रथ सहित मैं सब रघुवंशियों को कुठार की धारा में डुबो दूंगा । बाणों की वायु से मैं लक्ष्मण को उड़ा दूंगा तथा शक्तिशाली शत्रुघ्न को मैं लक्ष्य के समान बेध दूंगा । राम को पत्नी सहित वन में भेज कर मैं भरत को क्रोध के भाड़ में भून दूंगा और यदि राम ने हाथ में धनुष उठा लिया (युद्ध से लड़ने के लिए) तो मैं आज दशरथ को अनाथ कर दूंगा अर्थात् मैं दशरथ के वंश को ही समूल नष्ट कर दूंगा ।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

छन्द—किरीट सवैया ।

मूल— राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै ।
गहे भरत को हाथ, आवत राम बिलोकियो ।।१०।।

भावार्थ—परशुरामजी को देखकर रामचन्द्रजी शीघ्र ही रथ से उतर पड़े । उन्होंने भरत का हाथ पकड़े हुए राम को अपनी ओर आते हुए देखा ।

मूल— अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास,
चन्द्रहू ते चारु मुख सुखमा का ग्राम है ।
कोमल कमल-दल दीरघ विलोचननि,
सोदर समान, रूप न्यारो न्यारो नाम है ।
बालक विलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।
वैर जात वामदेव को धनुष तोरिइन,
जानत हौं बीस बिसे रामवेस काम है ।।११।।

शब्दार्थ—वपु—शरीर । पूरण पुरुष गुण—विष्णु के गुणों से युक्त । मोहियत—मोहित करता है । बीस बिसे—निश्चय पूर्वक ।

भावार्थ—राम का रूप देख कर परशुरामजी मन में विचार करते हैं कि इनका (राम का) शरीर निर्मल जल से भरे बादल के समान कितना सुन्दर है, और मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर और शोभा का समूह है । कमल के समान कोमल इनके बड़े-बड़े नेत्र हैं । दोनों भाई सहोदर हैं, रूप में समान हैं,

[illegible]— प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिए।
अखंड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिए।
अदेव देव जेय भीत रक्षमान लेखिए।
अमेय तेज भर्ग भक्त भार्गवेश देखिए ॥१३॥

शब्दार्थ—हैहयाधिराज—सहस्त्रार्जुन। दंडमान—दंड देने वाले। [illegible]मान-देने वाले। रक्षमान—रक्षा करने वाले। लेखिए—समझिए। अमेय—[illegible]धिक, अतुल। भर्ग—शंकर। भार्गवेश—परशुराम।

भावार्थ—रामचन्द्रजी भरत के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—हे भरत! [इ]न्हें प्रबल पराक्रमी सहस्त्रार्जुन को दंड देने वाला जानो, इन्हें तुम अखंड [की]र्ति का लेने वाला तथा अखंड भूमि का दान करने वाला समझो, असुरों और [दे]वताओं को जीतने वाला एवं भयभीत जनों की रक्षा करने वाला इन्हें मानो [औ]र तुम इन्हें अतुल तेजधारी, शंकर-भक्त भृगुवंशावतंस परशुराम समझो।

अलंकार—उल्लेख।

[illegible]ल— परशुराम—सुनि रामचन्द्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार।
राम—भृगुवंश के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस ॥१४॥

भावार्थ—परशुराम रामचन्द्रजी से पूछते हैं—हे मन और वचन से [उ]दार तथा बड़ी कीर्ति वाले रामचन्द्र! हमारी बात सुनो। (परशुरामजी राम[च]न्द्रजी से कुछ कहना चाहते थे, परन्तु बीच ही में बात काट कर राम कहते [हैं]) हे भृगुवंश के भूषण! आप क्या कहना चाहते हैं? कहिए।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

छन्द—तोमर।

[illegible]ल—परशुराम—तोरि सरासन शंकर को, सुभ सीय स्वयंबर माझ बरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा, मन मेरियो नेकु न संक करी॥
राम—सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुम ही तो कहो।
परशुराम—बाहु दै दोउ कुठारहि केशव आपने धाम को पंथ गहो ॥१५॥

शब्दार्थ—सरासन—धनुष। माझ—मध्य में। बरी—वरण किया है। [मे]रियो—मेरी भी। संक—शंका, भय। परो—हो गया है।

भावार्थ—पहले नरमी से मामला तय करना चाहते थे, किन्तु जब राम [ने] बात काट कर परशुरामजी को चिढ़ा दिया, तब वे कहने लगे—तुमने शंकर [का] धनुष तोड़ कर स्वयंवर में सीता को विवाहा है, इससे तुमको अत्यधिक [अ]भिमान हो गया है। भला यह तो बताओ कि धनुष तोड़ते समय तुमने मेरा [भी] तनिक भय नहीं माना, क्यों? तब राम ने स्वीकार किया कि हां, यह [अ]पराध तो अवश्य मुझ से बन पड़ा है, अब आप ही बताइए कि किस ढंग से [इ]स अपराध का प्रायश्चित होगा। तब परशुरामजी ने कहा—अपने दोनों हाथ [कु]ठार को देकर अपने घर का रास्ता लो—इसका प्रायश्चित यही है।

[illegible]

शब्दार्थ—[illegible] रोष—क्रोध। [illegible]
की महिमा। [illegible]

भावार्थ—सरल है।

विशेष—इस पद में [illegible] यह है कि रामचन्द्रजी परशु[illegible]
सूचित करते हैं कि अब आपका समय समाप्त हो गया—चला गया। (रामावतार का) समय आ गया है। इसलिए आपका अवसर अब तिनके के समान है।

अलंकार—लोकोक्ति से पुष्ट प्रश्नोत्तर।

छन्द—कुंडलिया।

मूल— केशव हैहयराज को मांस हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
ता लगि मेद महीपन को, घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार, जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौं नहिं सुख जो लहै तू रघुवंश को सोन-सुधा न पियो रे।।

शब्दार्थ—हलाहल—विष। कौरन—ग्रास। मेद—चर्बी। सि[illegible]
ठंडा हुआ। सोन-सुधा—रक्त रूपी सुधा का पानी।

भावार्थ—परशुरामजी अपने परशु को सम्बोधन करके कहते
कुठार! तूने हैहयराज सहस्त्रार्जुन के मांस को काटा है, सो मानो तूने हा[illegible]
विष के कौर खा लिये हैं। उस विष की शान्ति के लिए मैंने तुमको [illegible]
राजाओं की चर्बी घी की तरह घोल कर पिलाई, पर तब भी तेरा हृदय [illegible]
नहीं हुआ। इसलिए हे मित्र कुठार! अब यदि तू बहुत दिनों तक जीवित [illegible]
चाहता है तो मेरा कहना मान ले, तुझे तब तक सुख (शान्ति) नहीं मिले[illegible]
तक तू रघुवीर के रक्त रूपी सुधा को न पियेगा।

अलंकार—रूपक।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

विशेष—केशव ने प्रस्तुत छन्द में विष खाये हुए व्यक्ति का उप[illegible]

बहुत ही अच्छा बताया है—विष खाये हुए व्यक्ति को घी पिलाना चाहिए, ताजा खून पिलाना चाहिए एवं चूने का पानी पिलाना चाहिए।

उपर्युक्त छन्द में महात्मा जानकी प्रसाद न सरस्वती उत्कार्थ यों लगाया है—'हे कुठार! तुमको तब तक सुख न प्राप्त होगा जब तक तू राम के सुधा सम मधुर वचन कान से न पियेगा।'

मूल—

बोलत कैसे भृगुपति सुनिए,
सो कहिए तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो बड़प्पन राखौ,
जातें तुम सब जग यश पावौ॥
चन्दन हूं में अति तन घसिए,
आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति संहारे,
सो जस लै किन जुग-जुग जीजै॥१८॥

शब्दार्थ—बन आवे—बन सके। आदि बड़े ही—ब्राह्मण वर्ण होने से बड़े हो (इसलिए अवश्य हो)। गुनिलीजे—विचार कर लीजिए। हैहय—सहस्त्रार्जुन।

भावार्थ—भरत परशुराम से कहते हैं—हे भृगुपति! आप कैसी बात कह रहे हैं? आपको अपने मुख से वही बात निकालनी चाहिए जिसको आप तन-मन से पूरा कर सकें। आप आदि वर्ण हो (ब्राह्मण हो) इसलिए हम से बड़े ही, आप अपना बड़प्पन बनाये रहें, यही अच्छा है—ऐसा करने पर ही आपको संसार में यश मिलेगा। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो यह अच्छी तरह समझ लीजिए कि अधिक रगड़ से तो चंदन में भी आग लग उठती है। आपने सहस्त्रार्जुन को मारा है तथा अन्य कई राजाओं का संहार किया है—यह यश आपके लिए कम नहीं है। अच्छा है आप इस यश को लिए हुए संसार में युगयुगान्तर तक अमर बने रहें। भाव यह है कि आप हम से न भिड़ें, अन्यथा आपका यह अर्जित यश समाप्त हो जायगा।

मूल—

भली कही भरत्थ तैं उठाय आगि अंग तें।
चढाउ चोपि चाप आप बाण ले निखंग तें।
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहि राम लै छुड़ाइ कै॥१९॥

शब्दार्थ—चोपि—चाव से। भाइ—भाव। निखंग—तरकस।

भावार्थ—उपर्युक्त भरत-कथन को सुन कर परशुराम भरत से कहते हैं—हे भरत! तूने अच्छा कहा, ले। अब तू अपने अंग से आग उठा। तरकस से बाण निकाल कर तू बड़े चाव से धनुष पर चढ़ा और हमें अपना प्रभाव

दिखला। अब तू बाल-भाव छोड़ दे। हे राजपुत्र! तू वीरता प्रदर्शित मुझे प्रसन्न कर और राम को छुड़ा लेजा।

मूल— लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोम करि।
बरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा? ॥२०॥

शब्दार्थ—चाप—धनुष। बरज्यो—मना कर दिया।

मूल— भगवन्तन से जीतिए, कबहुं न कीने शक्ति।
जीतिय एकै बात तैं, केवल कीने भक्ति ॥२१॥

भावार्थ—राम अपने भाइयों को समझाते हैं कि भगवन्तों से द्वारा कोई नहीं जीतता। केवल भक्ति के द्वारा ही वे जीते जा सकते हैं। (राम की गणना भगवानों में की जाती है)।

मूल— जब हयो हैहयराज इन, बिन छत्र छिति मंडल करयो।
गिरि बेधि षटमुख जीति, तारक-नन्द को जब ज्यौ हरयो।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वत-नन्दिनी।
'वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भयी जग-वन्दिनी ॥२२॥

शब्दार्थ—हयो—मारा। बिन छत्र—बिना राज्य के। छिति-मंडल पृथ्वी मंडल। गिरि—पहाड़ (यहाँ क्रौंच नामक पहाड़ जिसको स्वामी कार्ति ने विदीर्ण किया था)। षटमुख—स्वामी कार्तिकेय (शिवजी के पुत्र)। तार नन्द—तारक नामक असुर का पुत्र। ज्यौ—जीव, प्राण। रेणुका-परशु की माता।

भावार्थ—परशुरामजी की प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं—जब इन्हों हैहयराज को मारा था तब समस्त पृथ्वी को बिना राजा के कर दिया था, क्रौंच पर्वत को विदीर्ण करने वाले स्वामी कार्तिकेय को जीत कर जब तारक पुत्र को इन्होंने मारा था, तब पार्वती ने कहा था कि मैंने परशुराम सा पुत्र पैदा किया, धन्य है वह रेणुका जो ऐसा वीर पुत्र करके इस पृथ्वी पर बन्दनीय बनी है। राम के कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी वीरता और पार्वती द्वारा भी प्रशंसित है, अतः ये बड़े वीर हैं।

छन्द—हरिगीतिका।

मूल— मुनि राम शील समुद्र। तव बन्धु हैं अति हाठ।
मम बाड़वानल कोप। अब किया चाहत सोर्ष ॥२३॥

भावार्थ—परशुराम कहते हैं—हे शील के समुद्र राम! तुम्हारे ये भाई बड़े हठ हैं। इसलिए अब मेरी क्रोध की बाड़वाग्नि इनको नष्ट करना चाहती है। भाव यह है कि तुम कुशल चाहो तो इनको मेरे सामने से हटा दो।

अलंकार—रूपक।

मूल— हौ भृगुनन्दन बली जग माही। राम बिदा करिए घर जाहीं॥
हौं तुमसो फिर युद्धहि माड़ौं। क्षत्रिय बंश को बैर लै छाड़ौं॥२४॥

शब्दार्थ—भृगुनन्द—भृगु ऋषि के पुत्र, परशुराम। माड़ौं—करूं।

भावार्थ—शत्रुघ्न कहते हैं—हे परशुरामजी! मतमुच आप संसार में बड़े बलशाली हैं (किन्तु आपका यह बल संसारी जीवों पर चलेगा, हम पर नहीं)। इसलिए राम को तो आप विदा कर दीजिए जिससे वे घर चले जायं। राम के चले जाने पर फिर मैं आप से युद्ध करूंगा और अब तक आपने जो क्षत्रियों का संहार किया है, उस सबका बदला चुका लूंगा।

अलंकार—स्वाभावोक्ति।

मूल— यह बात सुनी भृगुनाथ जबै। कहि रामहि लै घर जाहु अबै॥
इन पै जग जीवन जो बचि हौं। रण हौं तुम सों फिर कै रचि हौं
॥२५॥

भावार्थ—जब परशुरामजी ने शत्रुघ्न का यह कथन सुना तो उन्होंने भरत से कहा—तुम राम को लेकर अभी घर चले जाओ, मैं शत्रुघ्न से युद्ध करूंगा। यदि मैं इससे जीता बच गया तो फिर तुम से युद्ध करूंगा।

व्यंग्य यह है कि बड़ा भाई तो नम्रता दिखाता है और सबसे छोटा भाई हमें ललकारता है।

मूल— निज अपराधी क्यों हतौं, गुरु अपराधी छांडि।
तातें कठिन कुठार अब, रामहि सों रण मांडि॥२६॥

भावार्थ—परशुराम अपने कुठार को सम्बोधन करके कहते हैं—गुरु के प्रति अपराध करने वाले को छोड़ कर मैं अपने अपराधी को क्यों मारूं (क्यों कि गुरु-अपराधी अधिक दोषी है)? इसलिए हे कठिन कुठार! अब तू केवल राम से ही युद्ध कर।

मूल— भूतल के सब भूपन को मद भोजन तो बहु भांति कियोई।
मोद सों तारकनन्द को मेद पछयावरि पान सिरायो हियोई॥
खीर षडानन को मद केशव सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को शोणित पान को चाहै कुठार कियोई॥२७॥

शब्दार्थ—मद-भोजन—मद रूपी भोजन। पछयावरि—छाछ से बना एक पेय जो भोजनोपरान्त लिया जाता है (भोजन शीघ्र पचने के उद्देश्य से)। खीर—क्षीर, दूध। शोणित—रक्त। मेद—चर्बी। सिरायो—ठंडा।

भावार्थ—परशुराम राम से कहते हैं—मेरे इस कुठार ने संसार के सब राजाओं के मद का भोजन तो अनेक बार कर लिया है। बड़े आनन्द के साथ इसने तारक पुत्र की चर्बी को पछयावर के रूप में पीकर अपने हृदय को ठण्डा कर लिया है। इसने षडानन के मद को भी दूध की तरह एक पल मात्र

मारा कर्त्तव्य है कि हम गुरु लोगों की रक्षा करें और उनकी प्रतिपालना करें। हमें भूल कर भी उनके गुणावगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। किन्तु जब आपने अपनी माता को ही आनन्दित होकर मार डाला, तब अब मुझे भी गुरु-हत्या का पाप नहीं लगेगा। भाव यह है कि आप ब्राह्मण होने के नाते हमारे गुरु हैं, आपको मारने में हमें गुरु-हत्या का पाप लगेगा, किन्तु हम गुरु-हत्या के पाप से न डर कर आपको मार डालेंगे।

विशेष—परशुराम ने रामचन्द्रजी को गुरु-द्रोही ठहराया था, अतः लक्ष्मण भी परशुरामजी को स्त्री-वध एवं मातृ वध का दोषी ठहराते हैं और उन्हें गुरु-दोषी मानते हैं।

मूल—लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुसारथ सो न कह्यो परई।
बेस बनाइ कियो बनितानि को देखत केसव ह्यो हरई॥
क्रूर कुठार निहारि तजै फल ताको यहै जो हियो जरई।
आजु तें तेबल तोकों महाधिक छत्रिन पै जो दया करई॥३१॥

शब्दार्थ—लक्ष्मण के पुरिखान—क्षत्रिय लोगों ने। पुरुसारथ—पौरुष। ह्यो—हृदय। बन्धु—यह कुठार का संबोधन है।

भावार्थ—परशुराम अपने कुठार को सम्बोधन कर कहते हैं—लक्ष्मण के पुरुखों ने जो पौरुष दिखलाया है, वह कहा नहीं जा सकता। उन्होंने अपना रूप बदल कर स्त्रियों का वेश धारण कर लिया था जिसे देख कर मेरा मन मोहित हो गया। हे क्रूर-कर्मा कुठार! उन स्त्री-वेशधारी क्षत्रियों को देख कर भी जो तूने उनको छोड़ दिया, उसी का यह फल है जो इस समय तुम्हारा जी जल रहा है। हे बन्धु! आज से तुझे महा धिक्कार है जो तू क्षत्रियों पर दया करे। भाव यह है कि जैसे उन्हें स्त्री-वेश में देख कर छोड़ दिया था, वैसे ही इनको बाल-वेश में देख कर छोड़ने की गलती अब नहीं की जानी चाहिए।

विशेष—इस छन्द का सरस्वती उत्तार्थ इस प्रकार है—लक्ष्मण के बड़ों ने (रामचन्द्रजी ने) स्त्री का ऐसा सुन्दर रूप बना दिया जिसे देख मन मोहित होता है (गौतम की पत्नी अहल्या के उद्धार से तात्पर्य है)। अतः हे क्रूर-कर्मा कुठार! अब तू अपनी जड़ता त्याग कर उनकी शरण ले। यदि तू ऐसा नहीं करेगा तो तेरा हृदय सदा जला करेगा और ऐसा न करने पर मैं भी तुझे धिक्कारूँगा।

छन्द—मदिरा सवैया।

मूल—तब एक विंसति बेर मैं बिन छत्र की पृथ्वी रची।
बहु कुंड सोनित सों भरे पितु तर्पनादि क्रिया सची।
उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि संहारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छांड़हुं धर्म निर्दय धारिहौं॥३२॥

भावार्थ—राम परशुराम को संबोधित कर कहते हैं—हे सर्वलोक गुरु परशुराम ! सुनिए । आप एक नहीं, जितने भी आपके पास बाण हों, उन सब को तथा तपस्या के बाणों की अग्नि (शाप) को एक साथ एक ही बार में हमारे ऊपर छोड़ दो। मैं जिसने शिव-धनुष को खंड-खंड किया है, आपके सब बाणों की प्रहार धारा को सहन कर लूंगा । रामचन्द्रजी का परशुराम को यह कहना है कि जब मैंने शिव-धनुष को भंग किया है तब मैं दोषी हूँ ही, आप जो भी दंड या शाप मुझे देंगे, मैं उसे सहन करूंगा । किन्तु मैं आप पर हाथ न उठाऊंगा, क्योंकि आप सर्व-पूज्य ब्राह्मण हैं ।

इस छन्द का सरस्वती उत्तार्थ इस प्रकार है—जिसने तुम्हारे गुरु शिव का धनुष तोड़ दिया, उस पर तुम्हारे बाणों और शाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता अर्थात् तुम तो क्या, तुम्हारा गुरु भी हमारा कुछ नहीं कर सकता ।

मूल— बान हमारे के तनत्रान विचारि विचारि विरंचि करे हैं ।
गोकुल ब्राह्मण नारि पुसं जे जग दीन सुभाव भरे हैं ।।
राम कहा करिहो तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं ।
गाधिकेनन्द तिहारे गुरु जिनते ऋषिवेश किये उबरे हैं ।।३६।।

शब्दार्थ—तनत्रान—कवच (ऐसे व्यक्ति जिन पर बाणों का असर न हो) । विचारि—वि+चारि (विशेषचार व्यक्ति—गाय, ब्राह्मण, नारी और नपुंसक) । अदेव—राक्षस । गाधिकेनन्द—विश्वामित्र ।

भावार्थ—परशुराम गर्व के साथ राम से कहते हैं—हमारे बाणों का जिन व्यक्तियों के ऊपर कोई असर नहीं होता, ऐसे तो विधाता ने विचार कर केवल चार ही बनाये हैं और वे हैं—गऊ, ब्राह्मण, स्त्री और नपुंसक जो इस संसार में अत्यन्त दीन स्वभाव को धारण करते हैं । हे राम ! तुम मेरे बाणों से बचने का क्या उपाय करते हो ? सब देव और राक्षस मेरे बाणों से डरते हैं । तुम तो अभी बालक हो, तुम तो उन बाणों को सहन ही क्या करोगे ? तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी (जो क्षत्रिय थे) ऋषि होने के नाते उनसे बच पाये हैं ।

छन्द—सवैया (मत्तगयन्द) ।

मूल— भगन भयो हर-धनुष, साल तुमको अब सालै ।
वृथा होइ विधि-सृष्टि, ईश आसन तें चालै ॥
सकल लोक संहरहु, सेस सिर ते धर डारै ।
सप्त सिन्धु मिलि जाहिं होइ सबहिं तम भारै ।
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुझि जाहि बरु ।
भृगुनन्द संभारु कुठार, मैं कियो सरासन युक्त शर ।।३७।।

शब्दार्थ—भगन भयो—टूट गया । साल—कष्ट, दुःख । ईश—महादेव । धर—पृथ्वी । बरु—श्रेष्ठ । बुझि जाहि—समाप्त हो जाय ।

भावार्थ—अपने गुरु विश्वामित्र की शिक्षा राम ने ग्रहण कर ली। इसलिए उन्होंने राम के साथ परशुराम से कहा—मैंने शिव-धनुष तोड़ कर दिया, इसका आपको दुःख हो रहा है, किन्तु आप मेरी शक्ति नहीं जानते। मैं वह व्यक्ति हूँ जो यदि चाहूँ तो विधाता की इस सृष्टि को नष्ट कर दूँ। महादेव का जो अपने धनुष दे दिया हूँ। मैं वेद को नष्ट कर दूँ (संहार कर दूँ), शेषनाग के सिर से पृथ्वी को गिरा दूँ, सातों समुद्र मेरी आज्ञा से मिल कर एक हो जायं, सर्वत्र घोर अन्धकार हो जाय। यहाँ तक कि यदि मैं चाहूँ तो नारायणी शक्ति का यह निर्माण आप में मौजूद है, समाप्त हो जाय। हे परशुराम! अब आप शान्त हो जाइए, क्योंकि मैंने अपने धनुष पर बाण संधान किया है।

विशेष—राम ने यहां परशुराम को स्पष्ट संकेत कर दिया कि आप में नारायणी शक्ति नहीं रही है। मैं अब बारह कला से मौजूद बन गया हूँ। अब आप के कुठार से दुष्ट-दलन की शक्ति नहीं रही है, अब यह ईंधन के लिए जंगल से लकड़ी काटने के काम का रह गया है।

अलंकार—परिकरांकुर।

मूल—

राम-राम जब कोप करयो जू।
लोक-लोक भय भूरि भरयो जू॥
वामदेव तब आपुन आये॥
रामदेव दोउन समझाये॥३८॥

शब्दार्थ—राम-राम—रामचन्द्र और परशुराम। वामदेव—महादेव। भूरि—बहुत अधिक। आपुन—स्वयं। दोउन रामदेव—दोनों रामों से।

भावार्थ—सरल है।

मूल—

महादेव को देखिके, दोऊ राम विशेष।
कीन्हों परम प्रणाम उन, आशिष दियो अशेष॥३९॥

भावार्थ—सरल है।

मूल—

भृगुनन्दन सुनिए, मन महँ गुनिए, रघुनन्दन निर्दोषी।
निजु ये अधिकारी सब सुखकारी सब ही विधि संतोषी॥
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो धनुष जो टूट्यो मैं तन मन सुख पायो॥४०॥

शब्दार्थ—निजु—निश्चय। आयुर्बल खूट्यो—अब आपका अवतार खतम हो गया (अब आप ईश्वर के अवतार नहीं रहे)।

भावार्थ—भगवान शंकर परशुराम से कहते हैं—हे भृगुनन्दन! मैं जो कह रहा हूँ, उसे सुनिए और उस पर विचार कीजिए। रामचन्द्र निर्दोषी हैं (इन्होंने आपका अपमान करने के लिए धनुष को नहीं तोड़ा।

तो ईश्वर के अवतार हैं—अविकारी हैं। ये सब को सुख देने वाले हैं, कार से इच्छा रहित हैं। फिर, तुम और ये दोनों एक ही हो—अलग-हीं हो—यहां तक कि दोनों का नाम भी एक ही है। हे परशुराम! स समय जा चुका, अब आप ईश्वर के अवतार नहीं रहे। और धनुष पर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, प्रत्युत मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

तुम अमल अनन्त अनादि देव।
नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सब को समान नहिं बैर नेह।
सब भक्तन कारन धरत देह॥४१॥
अब आपन पौ पहिचानि विप्र।
अब करहु आगिलो काज छिप्र।
तब नारायण को धनुष जानि।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि॥४२॥

शब्दार्थ—भेव—रहस्य, भेद। छिप्र—शीघ्र। पानि—हाथ।

भावार्थ—महादेवजी परशुराम से कहते हैं—तुम ईश्वर के अवतार हो, रहित और आदि-अन्त रहित है, वेद भी जिसके रहस्यों को नहीं जानते ईश्वर सब के लिए समान है, वह न किसी से प्रेम करता है और न बैर, वह केवल भक्तों के कारण नर-देह वा अन्य कोई भी देह धारण। ऐसा विचार कर हे विप्र! अब तुम अपने वास्तविक स्वरूप को और इससे आगे का जो कार्य है, उसे शीघ्र पूरा करो। (आगे का कार्य क राम राक्षसों का वध करके पृथ्वी के भार को हल्का करें और तुम तपस्या पूर्ण करो)। महादेवजी की इन बातों को सुन कर परशुरामजी यण का धनुष जो उनके पास था, रामचन्द्रजी के हाथों में दे दिया—ने के लिए कि क्या सचमुच वे (रामचन्द्र) नारायण के अवतार हैं।

अलंकार—अतिशयोक्ति उल्लेख।

नारायण को धनु बान लियो। ऐं च्यों हँसि देवन मोद कियो॥
रघुनाथ कहेउ अब काहि हनों। त्रैलोक्य कंप्यो भय मान घनो॥४३॥
दिगदेव दहे बहु बात बहे। भू कम्प भये गिरिराज ढहे।
आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये॥४४॥

शब्दार्थ—हनों—मारूं। बात—हवा। अमान—अमित। रये—किया।

भावार्थ—जब रामचन्द्रजी ने परशुराम द्वारा दिया गया नारायणी पने हाथों में लिया और उसे खींचा, तब देवता लोग बड़े प्रसन्न हुए। हंस कर राम ने परशुराम से पूछा—कहो, अब किसे मारूं? यह देख नों लोक भय के मारे कांपने लगे, दिग्पाल जलने लगे, प्रचंड वायु बहने

द्र तो ईश्वर के अवतार हैं—अविकारी हैं। ये सब को सुख देने वाले हैं, सब प्रकार से इच्छा रहित हैं। फिर, तुम और ये दोनों एक ही हो—अलग-अलग नहीं हो—यहां तक कि दोनो का नाम भी एक ही है। हे परशुराम! आपका समय जा चुका, अब आप ईश्वर के अवतार नहीं रहे। और धनुष टूटने पर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, प्रत्युत मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

—

तुम अमल अनन्त अनादि देव।
नहि वेद बखानत सकल भेव॥
सब को समान नहि बैर नेह।
सब भक्तन कारन धरत देह॥४१॥
अब आपन पौ पहिचानि विप्र।
अब करहु आगिली काज छिप्र।
तब नारायण को धनुष जानि।
भृगुनाथ दिया रघुनाथ पानि॥४२॥

शब्दार्थ—भेव—रहस्य, भेद। छिप्र—शीघ्र। पानि—हाथ।

भावार्थ—महादेवजी परशुराम से कहते हैं—तुम ईश्वर के अवतार हो, मल-रहित और आदि-अन्त रहित है, वेद भी जिसके रहस्यों को नहीं जानते वह ईश्वर सब के लिए समान है, वह न किसी से प्रेम करता है और न किसी से बैर, वह केवल भक्तों के कारण नर-देह या अन्य कोई भी देह धारण करता है। ऐसा विचार कर हे विप्र! अब तुम अपने वास्तविक स्वरूप को जानो और इससे आगे का जो कार्य है, उसे शीघ्र पूरा करो। (आगे का कार्य है कि राम राक्षसों का वध करके पृथ्वी के भार को हल्का करें और तुम अपनी तपस्या पूर्ण करो)। महादेवजी की इन बातों को सुन कर परशुरामजी नारायण का धनुष जो उनके पास था, रामचन्द्रजी के हाथों में दे दिया—यह जानने के लिए कि क्या सचमुच वे (रामचंद्र) नारायण के अवतार हैं।

अलंकार—अतिसंयोक्ति उल्लेख।

—
नारायण को धनु बान लियो। ऐंच्यों हँसि देवन मोद कियो॥
रघुनाथ कहेउ अब काहि हनों। त्रैलोक्य कंप्यो भय मान घनो॥४३॥
दिग्देव दहे बहु बात बहे। भू कम्पु भये गिरिराज बहे।
आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये॥४४॥

शब्दार्थ—हनों—मारू। बात—हवा। अमान—अमित। रये—किया।

भावार्थ—जब रामचन्द्रजी ने परशुराम द्वारा दिया गया नारायणी धनुष अपने हाथों में लिया और उसे खींचा, तब देवता लोग बड़े प्रसन्न हुए। धनुष चढ़ा कर राम ने परशुराम से पूछा—कहो, अब किसे मारूँ? यह देख कर तीनों लोक भय के मारे कांपने लगे, दिग्पाल जलने लगे, प्रचंड वायु बहने

गयी, बड़े जोर का भूकम्प आ गया, पहाड़ टूट टूट कर गिरने लगे
व देवताओं व असंख्य विमान आ गये और भय के मारे सब के मुख से
व शब्द निकलने लगे।

अलंकार—दीपक।

मूल—

जग गुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो।
मम गति मारो। हृदय विचारो ॥४५॥

भावार्थ—परशुराम राम से कहते हैं—तुम जगत् के गुरु हो, तीन
द्वारा तुम पूज्य हो। अतः अब अपने हृदय में विचार करके मेरे मन की
अर्थात् मेरे अहंकार को नष्ट कर दो (जिस से मैं शान्ति के साथ तप
सकूँ)।

मूल—

विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्योंही करी, परशुराम गति भंग ॥४६॥

शब्दार्थ—पुष्पशर—फूल के बाण से। अनंग—कामदेव।

भावार्थ—लम्पट पुरुष की गति को जिस प्रकार कामदेव फूल के
से मार देता है, उसी तरह रामचन्द्रजी ने नारायणी बाण से परशुराम
गति को भंग कर दिया।

अलंकार—उदाहरण।

मूल— सुरपति गति भानी, शासन मानी, भृगुपति को सुख भारो।
आशिष रस भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहि मारो॥
अति अमल भये रवि, गगन बढ़ी छवि, देवन मंगल गाये।
सुरपुर सब हरषेहु, पुहुपन बरसे, दुंदुभि दीह बजाये ॥४७॥

शब्दार्थ—सुर पति-गति—वैष्णवी गति (विष्णु के अंशावतार
शक्ति)। भानी—नष्ट कर दी। शासन—शासन, आज्ञा। दीह—बड़े-बड़े।

भावार्थ—जब रामचन्द्रजी ने परशुरामजी की आज्ञा मान कर उन
वैष्णवी गति भंग कर दी, तब परशुरामजी को बड़ा सुख हुआ। परशुरामजी
रामचन्द्रजी को आशीर्वाद दिया और कहा कि आपने हमें सब प्रकार से सुखी
बना दिया (दुष्ट दलन की सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर)। अब आप रावण
को मारिए। ऐसा कहने के अनन्तर वातावरण एकदम बदल गया—सूर्य
निर्मल होकर निकल आया। आकाश शोभायुक्त हो गया। देवता मंगल गान
करने लगे। सुरपुर निवासी हर्षित हो उठे—फूल बरसा कर बड़े बड़े नगाड़े
बजाने लगे। (नारायणी धनुष के खींचने पर जो हल-चल मच गई थी, शान्त
हो गई)।

मूल—

सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीन्ही लात।
भृगुकुल पति की गति हरी, मनो सुमरि वह बात ॥४८॥

शब्दार्थ—सीतानाथ—विष्णु, नारायण। भृगुकुलपति—परशुराम।

भावार्थ—किसी समय भृगुमुनि ने सोते समय मे नारायण को लात थी, उसी का स्मरण करके मानो नारायणावतार राम ने भृगुकुल मे श्रेष्ठ रामजी की गति को पंगु कर दिया।

अलंकार—स्मरण, उत्प्रेक्षा, प्रत्यनीक।

विशेष—यदि कोई पूज्य को लात मारे तो उसका पैर तोड देना ए—यह शास्त्रोक्त दंड है। राम ने मर्यादा रक्षणार्थ भृगुमुनि के अपराध ड उनके वंशज परशुराम को दिया।

— दशरथ जगाइ। संभ्रम भगाइ।
चले रामराइ। दुंदुभि बजाइ ॥४६॥

शब्दार्थ—संभ्रम—सम्पूर्ण भ्रम।

भावार्थ—महाराज दशरथ को मूर्छा मे जगा कर (परशुराम के आने उनके क्रुद्ध होने मे राजा दशरथ मूर्छित हो गये थे) और उनका सम्पूर्ण दूर कर (यह कह कर कि परशुराम हमसे हार गये), नगाड़े बजवा कर चन्द्रजी आगे चले।

—ताड़ का तारि सुबाहु संहारि कै गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हरयो हर को हठि केशव देव अदेव हुते सब हारे।
सीतहि व्याहि अभीत चले गिरिगर्व चढ़े भृगुनन्द उतारे।
श्री गरुड़ध्वज को धनु लै रघुनन्दन औधपुरी पगुधारे ॥५०॥

शब्दार्थ—सुबाहु—एक राक्षस का नाम। गौतम नारि—अहल्या। क टारे—पाप दूर कर दिये। चाप हरयो—धनुष तोड़ दिया। हर—महादेव। —थे। अभीत—निर्भय होकर। गिरि गर्व—घमण्ड रूपी पहाड़। श्री गरुड़- —विष्णु।

भावार्थ—कवि केशवदास रामचन्द्रजी के बारे मे कहते हैं—ताड़का की राक्षसी का उद्धार करके, सुबाहु नामक राक्षस को मार करके, गौतम- ी अहल्या के सब पापों को दूर करके रामचन्द्रजी ने हठपूर्वक शिव-धनुष को दिया। केशवदास कहते हैं कि धनुष-यज्ञ में आये हुए सब देव और राक्षस मे हार गये (कोई भी धनुष न उठा सका और न तोड़ सका)। राम सीता साथ विवाह करके निर्भय होकर चल दिये (और मार्ग मे) उन्होंने घमण्ड पहाड़ पर चढ़े हुए परशुराम को नीचे उतार दिया अर्थात् उनका घमंड कर दिया। रामचन्द्रजी न परशुराम जी द्वारा दिये गये नारायणी धनुष को लेकर अयोध्यापुरी मे प्रवेश किया।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

अलंकार—अनुप्रास।

---

(५) वन-मार्ग में राम

मूल—विपिन-मारग राम विराजहीं।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राज हीं॥
विविध श्रीफल सिद्ध मनो फल्यो।
सकल साधन सिद्धिहि ले चल्यो॥१॥

शब्दार्थ—श्री=शोभा। फल=तपस्या के फल। सोदर=सगा भाई
। सुन्दरि=सुन्दर पत्नी सीता। सिद्धिहि=सिद्धियों को, सिद्धियां आठ
अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।
=शोभा पाते हैं।

भावार्थ—राम वन-मार्ग से जाते हुए शोभा पा रहे हैं, साथ में सुख
वाली सुन्दर पत्नी और सगा भाई लक्ष्मण हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो
सिद्ध पुरुष अपनी तपस्या से सफल होकर शोभा पा रहा हो और अपने
साधनों और प्राप्त सिद्धियों को समेट कर अपने घर आ रहा हो। राम
हैं, लक्ष्मण साधन हैं, सीता एकत्रीभूत सिद्धियां हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

छन्द—द्रुतविलम्बित।

मूल—कौन हो, कितते चले, कित जात हो, केहि काम जू।
कौन की दुहिता बहू, कहि कौन की यह बाम जू॥
एक गांव रहो कि साजन मित्र बन्धु बखानिए।
देश के परदेश के किधौं, पंथ की पहिचानिए॥२॥

शब्दार्थ—बाम=स्त्री, पत्नी। साजन=आदरणीय, सज्जन। किधौं=
। पंथ की पहिचानिए=तुम लोगों केवल मार्ग के ही साथी संगी हो, या
गांव के या एक कुल के हो।

अलंकार—सन्देह।

मूल—किधौं यह राजपुत्री, बरही बरी है, किधौं,
उपदि बर्यो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसौदास,
जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हौ॥
किधौं मुनि शाप हत, किधौं ब्रह्म दोष-रत,
किधौं सिद्धियुत, सिद्ध परम विरत हौ।

भावार्थ—राम, सीता और लक्ष्मण वन-मार्ग में चलते हुए ऐसे मालूम होते हैं मानो मेघ, आकाश गंगा और बिजली ही देह धारण करके सुन्दर रूप से शोभित हो रहे हों (राम मेघ हैं, सीता आकाश गंगा हैं और लक्ष्मण गौरांग होने के कारण बिजली हैं), अथवा यों कहो कि अनेक गंगा, सरस्वती और यमुना के ये देहधारी प्रवाह हैं, जो इनके दर्शन कर रहे हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं (क्योंकि इनके दर्शन तीर्थराज प्रयाग के समान पुण्यप्रद हैं), अथवा ऐसा लगता है मानो इन्द्र अपनी प्रिया इन्द्राणी और अपने पुत्र जयन्त को लिये हुए भूलोक की शोभा बढ़ा रहे हों, अथवा मानो दोनों पक्षों की संधि की तीनों संध्याएं एक जगह इकट्ठी हो गई हों, जिन्हें प्रत्यक्ष देखकर मन मोहित हो जाता है।

अलंकार—सन्देह से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

विशेष—दोनों पक्षों की संधि से तात्पर्य है अमावस्या या पूर्णिमा का क्योंकि ये दोनों पक्षों के संधिकाल में आती हैं। सामवेदी संध्या से यह प्रमाण है कि प्रातः संध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत और सायं संध्या का रंग श्याम है।

मूल—तड़ाग नीर हीन ते सनीर होत केशोदास,
पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंड ही।
तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखि के रहे,
ते बाग फूलि फूलि के समूल सूल खंड ही॥
चितै चकोरिनी चकोर मोर मोरनी समेत,
हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ें।
जहीं जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं,
अनेक भांति के अनेक भोग भाग सों बढ़ें॥३॥

शब्दार्थ—पुंडरीक=कमल। सूल=दुःख। खंडहि=नष्ट कर देते हैं। चितै=देखती हैं। बल्लरी=लता। सारिका=मैना। भाग सों=भाग्य के कारण।

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि मार्ग में जहां-जहां राम विश्राम करते हैं वहां वहां अनेक प्रकार के सुख या भोग भाग्य के समान स्वयमेव बढ़ जाते हैं। मार्ग में स्थित तालाब जो सूखे पड़े थे, जलयुक्त हो जाते हैं; उनमें कमलों के समूह लहलहाने लगता है और उन पर भौंरों की भीड़ मंडराने लगती है। तमाल के वृक्ष जो लताओं सहित सूखे हुए थे, वे बगीचों में खूब बढ़कर

अम्बर-विलास—(१) जो आकाश मे विलास करता है (२) जो सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित है। कुवलय हितु—(१) कुमोदिनी का हितैषी (२) (कु+वलय) पृथ्वी मंडल का हित करने वाली। सीतकर—(१) ठंडी किरणों वाला (२) संताप-हारिणी, दर्शकों को आनन्द देने वाली।

संदर्भ—मार्ग में कोई ग्राम-निवासिनी सीता की मुख-शोभा को चन्द्रमा से तुलना करती हुई कहती है—

भावार्थ—हे सीते! सब लोग उसको (चन्द्रमा को) मृगांक कहते हैं तुझे भी सब लोग मृग-नयनी कहते हैं। वह सुधा को धारण करने वाला है तू भी अपने होठों में सुधा रखती है। वह द्विजराज कहलाता है तो तेरे भी दंत पंक्ति (द्विजराजि) सुशोभित है। वह कलानिधि (एक-एक कला कर बढ़ने वाला) है तो तू भी सब कलाओं की जानकार है। हे सीते! तुम और चन्द्रमा दोनों ही रत्नाकर के प्रकाशक हो—चन्द्रमा समुद्र को प्रकाशित करता है (चंद्रमा समुद्र से पैदा हुआ है, इसलिए वह उसके नाम को उजागर करता है) और तू भी रत्न-जटित आभूषण धारण करती है। चन्द्रमा अंबर (आकाश) में विलास करता है और तेरे शरीर पर भी अम्बर (वस्त्र) विलास करते हैं। चन्द्रमा कुमोदिनी का हितैषी है तो तू भी पृथ्वी की कन्या होने के कारण पृथ्वी मंडल का हित चाहने वाली है। चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं तो तू भी दर्शकों के संताप को हर करके शान्ति प्रदान करने वाली है। इस प्रकार संसार के निवासी तुझे चन्द्रमा के समान मानते हैं, क्योंकि तू चन्द्रमा से किसी भी गुण में कम नहीं है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

छन्द—मनहरण कवित्त।

मूल—कलित कलंक केतु, केतु अरि सेत गात,
भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो।
पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो,
छन छन छीन होत छीलर के जल सो।
चन्द्र सो जो बरनत रामचन्द्र की दोहाई,
सोई मति मंद कवि केशव मुसल सो।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो ॥१०॥

शब्दार्थ—कन्द=बादल। आनन्द को कन्द=आनन्द की वर्षा करने वाला। रयनि=रजनि, रात्रि। अनदेखेई कमलचन्द=बिना देखे ही कमल और चन्द्रमा अच्छे लगते हैं केवल अपने प्रभाव और गुण के कारण, इनका वास्तविक रूप देखने में सुन्दर नहीं है।

संदर्भ—वन-मार्ग में राम, लक्ष्मण और सीता को जाते हुए देख कर एक ग्रामवासिनी ने सीता के मुख को चन्द्रमा बताया; दूसरी ने चन्द्रमा का खंडन करके मुख की तुलना कमल से की। अब तीसरी ग्रामवासिनी दोनों स्त्रियों के कथन की काट करती हुई कहती है कि सीता मुख मुख है, न वह चन्द्रमा के समान है और न कमल के समान।

भावार्थ—कोई सीता के मुख को कमल-सा निर्मल बताता है और कोई उसे चन्द्रमा के समान आनन्द-दायक। पर मैं कहती हूँ कि यदि सीता का मुख कमल के समान होता तो वह रात्रि को संकुचित हो जाता, और यदि वह चन्द्रमा के समान होता तो दिन में उसकी आभा मन्द पड़ जाती (कमल केवल दिन में ही खिलता है—प्रफुल्लित रहता है और चन्द्रमा केवल रात्रि में ही प्रकाश देता है), पर यह मुख तो रात दिन सारे संसार से सम्मान पाने योग्य है। कमल और चन्द्रमा देखने में उतने सुन्दर नहीं हैं जितना यह मुख है। उनके तो केवल गुण सुनने में भले जंचते हैं, पर यह मुख टकटकी बांधकर देखने में ही आता है (सौन्दर्य से तृप्ति नहीं होती)। इस कारण मेरी सम्मति तो यह है कि सीता के मुख के समान सीता का मुख ही है, इसके समान न कमल है और न चन्द्रमा।

अलंकार—अनन्वयोपमा।

छन्द—मनहरण कवित्त।

मूल—सीता नयन चकोर सखि रविवंशी रघुनाथ।
रामचन्द्र सिय कमल मुख भलो बन्यो है साथ ॥१२॥

भावार्थ—कोई ग्रामीण स्त्री अपनी सहेली से कहती है—हे सखी सीता के नेत्र चकोर हैं और रामचन्द्रजी सूर्यवंशी हैं, फिर भी सीता के नेत्र-चकोर राम पर आसक्त हैं। रामचन्द्रजी चन्द्र हैं, जिन्हें देख सीता का मुख-कमल प्रसन्न रहता है—यह बड़ा ही अद्भुत संयोग है।

अलंकार—विरोधाभास। चकोर और रवि में विरोध है (यहाँ सीता

मूल—मारग यों रघुनाथ जू, दुख सुख सब ही देत।
चित्रकूट परवत गये, सोदर सिया समेत ॥१५॥

भावार्थ—मार्ग में सब लोगों को अपने दर्शनों से सुख तथा पुनः अपने वियोग से दुःख देते हुए रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और सीता के सहित चित्रकूट पर्वत पर पहुंच गये।

(६) पंचवटी-स्थित राम

मूल—केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचन्द्र रणवीर ॥१॥

भावार्थ—कवि केशवदास कहते हैं कि अगस्त्य ऋषि के कहे अनुसार रण में वीर रामचन्द्रजी ने पंचवटी नामक वन के एक किनारे (उस वन के मध्य में नहीं) पर अपने रहने के लिए एक पत्तों की कुटी बना ली।

मूल—फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलख बोलें।
अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, वन-वन प्रति नाचति डोलें॥
सारी शुक पंडित, गुन गन मंडित, भावनमय अरथ बखानें।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानें ॥२॥

शब्दार्थ—कलरव=मीठी धीमी आवाज। सारी=शारिका, मैना। भावनमय=प्रेम-भावना से पूर्ण। सहायक=लक्ष्मण। मधु=बसन्त।

भावार्थ—रामचन्द्रजी के निवास करने से वह पंचवटी का खंड कैसा बन गया—इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—वहां के सुन्दर-सुन्दर वृक्ष फल-फूलों से परिपूर्ण हो गए। कोयलें मधुर मंद शब्द से गाने लगीं। अपने प्रियतम मयूर के प्रेम में मस्त होकर मयूरी मयूर के साथ वनों में नाचने और फिरने लगी। मैना और तोते सर्वगुणसम्पन्न पंडित की तरह भावनामय अर्थ बताने लगे (वे कोयल के गानों का तथा मयूरियों के नृत्य को भावमय व्याख्या करने लगे)। उस वन में निवास करने वाले प्राणियों ने सीता और लक्ष्मण सहित राम को रति और वसन्त के साथ कामदेव समझा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

छन्द—त्रिभंगी।

मूल—सब जाति फटी, दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहं एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी, जग जीव यतीन की छूटि तटी॥
अघ-ओघ की बेरि कटी बिकटी, निकटी प्रगटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुं ओरन नाचति मुक्ति नटी, गुण धूरजटी वन पंचवटी ॥३॥

भावार्थ—लक्ष्मण कह रहे हैं—दंडक वन की शोभा पुनः अच्छी हो है; अनेक प्रकार की धनी सुन्दरता इसमें आगई है। यह शोभा ऐसी मालूम है मानों किसी बड़े राजा की सेवा हो, क्योंकि जैसे राजा की सेवा में ने-वैभव भूरिभाव से बसता है, वैसे ही उस वन में भी श्रीफल (बेल फल) अधिकता थी।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—बेर भयानक सी अति लगै, अर्क समूह जहाँ जग मगै॥
नैनन को बहु रूपन ग्रसै। श्री हरि की जनु मूरत लसै॥५॥

शब्दार्थ—अति भयानक बेर=अत्यन्त भयानक बेला (प्रलय काल)। =(१) सूर्य (२) मन्दार-वृक्ष।

भावार्थ—इस दंडक वन की शोभा प्रलय काल की सी वेला जान ती है, क्योंकि जैसे प्रलय काल में अनेक सूर्य प्रचंडता से चमकते हैं, वैसे ही वन में भी अनेक मंदार-वृक्ष जगमगा रहे हैं। दंडक वन की शोभा अनेक से नेत्रों को पकड़ लेती है (दर्शक टकटकी लगा कर उस की शोभा देखा ते हैं)। यह वन ऐसा प्रतीत होता है मानो यह श्री हरि की मूर्ति ही हो से श्रीहरि की मूर्ति का सौन्दर्य देखने ही आखों को तृप्ति नहीं होती, वैसे इस वन की शोभा देख कर नेत्रों को संतोष नहीं होता)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो॥
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिन्दुर औ तिलकावलि रूरी॥६॥

शब्दार्थ—पांडव की प्रतिमा=राजा पांडु के पुत्रों (युधिष्ठिर, भीम, न, नकुल, सहदेव) की मूर्ति। अर्जुन=(१) तीसरा पांडु-पुत्र (२) अर्जुन क वृक्ष। भीम=(१) दूसरा पांडु-पुत्र (२) अम्लवेत नामक वृक्ष। मति=हे बुद्धिमान लक्ष्मण! सुभगा=सौभाग्यवती स्त्री। दीपति=कांति, में। सिन्दुर=(१) सिंदूर (२) सिन्दूर नामक वृक्ष। तिलक=(१) पत्र-ना, एक प्रकार का चेहरे का मेक-अप। (२) तिलक नामक वृक्ष। रूरी=सी, शोभाप्रद।

भावार्थ—लक्ष्मणजी की उपर्युक्त उत्प्रेक्षाएं सुनकर रामचन्द्रजी कहते —हे बुद्धिमान लक्ष्मण! देखो, यह वन पांडवों की मूर्ति के समान लगता है, कि इसमें अर्जुन और भीम (अम्लवेत) मौजूद हैं। इस वन की शोभा किसी

सिन्दूर और तिलक वृक्षों की अवली (पंक्ति) शोभा दे रही है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

विशेष—इस छन्द में काल-विरुद्ध अर्थ-दोष है। राम के मुख

का वर्णन कराना सर्वथा असंगत है।

मूल—राजति है यह ज्यों कुल-कन्या।
धाइ विराजित है संग धन्या॥
केलि-थली जनु श्री गिरिजा की।
शोभ धरे सित कंठ प्रभा की॥७॥

शब्दार्थ—कुल-कन्या=कुलीन घर की कन्या। धाइ=(१) ध
पालने वाली स्त्री (२) धवई नामक वृक्ष। केलि-थली=क्रीड़ा-स्थल। गि
—पार्वती। सितकंठ=(१) महादेव (२) मयूर।

भावार्थ—(यह वन के सम्बन्ध में सीता की उत्प्रेक्षा है)। हे
रहती है—इस वन की शोभा एक कुल-कन्या के समान है, क्योंकि
ल-कन्याओं के साथ सदा धाय रहती है, वैसे ही यहाँ भी धाय नामक
राजते हैं। इस वन की शोभा पार्वती की क्रीड़ास्थली के समान है, क्यों
पार्वती की क्रीड़ास्थली में सित कंठ (महादेवजी) रहते हैं, वैसे ही यहाँ
तकंठ (मयूर) रहते हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

मूल—अति निकट गोदावरी पाप संहारिणी।
चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी॥
अलि कमल सौगन्ध लीला मनोहारिणी।
बहु नयन देवेश शोभा मनोधारिणी॥८॥

शब्दार्थ—चल=चंचल। तुंग=ऊँची। सौगन्ध=सुगन्ध। देवेश

भावार्थ—राम कहते हैं—हमारी पर्णकुटी के समीप ही पापों को न
र्मी गोदावरी नदी बहती है, जो चंचल और ऊँची तरंगों से युक्त है
भौंरे सहित सुगंधित कमलों की शोभा से मन को हरती है। दे
ता है मानो यह गोदावरी बहुलोचन इन्द्र की शोभा धारण किये है।

भाव यह है कि जैसे इन्द्र के शरीर में बहुत से नेत्र हैं, वैसे ही इस [गोदाव]री में भौंरों से युक्त असंख्य कमल हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—रीति मनो अविवेक की थापी। साधुन की गति पावत पापी।
कंजज की मति सी बड़ भागी। श्रीहरि मंदिर सों अनुरागी ॥६॥

शब्दार्थ—थापी=चलाई। कंजज=ब्रह्मा। श्रीहरि मंदिर=वैकुण्ठ,

भावार्थ—राम कहते हैं कि इस गोदावरी नदी ने ऐसी अविवेकपूर्ण [रीति] चला रखी है कि जो पापी इसके सम्पर्क में आता है, वह साधुओं की [गति] प्राप्त कर लेता है (इसके दर्शन, मज्जन और पान से पापियों को भी [वैकु]ण्ठ-वास मिल जाता है)। यह गोदावरी बड़ भागी ब्रह्मा की मति के समान [श्री]हरिमंदिर में अनुराग रखती है—अर्थात् ब्रह्मा की मति सदैव परमधाम [वैकु]ण्ठ की ओर लगी रहती है और यह गोदावरी भी सदा समुद्र की ओर बहा [कर]ती है।

अलंकार—व्याजस्तुति, उत्प्रेक्षा और उपमा का संकर।

मूल—निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी।
निगम सदा गति सुनिए। अगति महापति गुनिए ॥१०॥

शब्दार्थ—निगम गति=मुक्ति। अगति=सदा एक सी गति। महा-[पति]=समुद्र। गुनिए=समझिए।

भावार्थ—राम कहते हैं कि यह गोदावरी यद्यपि सदैव अपने पति [समु]द्र की सेवा में लीन रहती है (पूर्ण पतिव्रत-धर्म का पालन करती है), [त]थापि यह सदा संसार के प्राणियों के दुःख को हरने वाली है। यह पापी [लो]गों को तो निगम-गति अर्थात् मुक्ति प्रदान करती है, किन्तु अपने पति समुद्र [को] सदा अगति (अचल, न बहने वाला, जहां का तहां रहने वाला) ही [कर]ती है।

अलंकार—विरोधाभास।

मूल—विषमयं यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥११॥

शब्दार्थ—विष=(१) जल (२) जहर। अमृतन को फल=देवताओं के

लीनी कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की ॥
केसव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥१३॥

शब्दार्थ—धूमकेतु=अग्नि। धूमधलि=बादल। सुधाधाम=चन्द्रमा। सुन्दर, बड़े। बगरूर=बवंडर। संबर=शंबर (एक राक्षस)। मठेस= (किसी मठ का अधिपति)। स्वपचराज=चांडाल। अदृष्ट=भाग्य, प्रारब्ध। =पत्नी। छाया जाया राम की=राम की छायामय पत्नी सीता (असली नहीं; मायामयी सीता)।

भावार्थ—केशवदास कवि कहते हैं कि रावण के वश में पड़ी सीता मालूम होती है मानो धूम-समूह में अग्नि की शिखा हो, या बादल में ...ता हो, या बड़े बवंडर में कोई सुन्दर चित्र हो, या शंबर राक्षस ने काम- ...की पत्नी रती का अपहरण किया हो, या किसी पाखंडी की सिद्धि हो ...डी में असली सिद्धि नहीं होती, वैसे ही रावण के वश में असली सीता ...थी), या मठाधीश के वश में जबरदस्ती पड़ी एकादशी हो, या चांडाल ...धिकार ही शुद्ध सामवेद की शाखा ग्रहण की हो। केशव कहते हैं कि ...प्रारब्ध के फंदे में जीव की ज्योति (ईश्वर का अंश) पड़ी हुई हो, वैसे ही ...के फंदे में राम की पत्नी सीता का मायामय रूप पड़ा हुआ था।

अलंकार—सन्देह से पुष्ट उपमा।

छन्द—मनहरण कवित्त। इसमें यति-भंग दोष है 'शिखा' शब्द पर।

मूल—हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि बीर।
हा पुत्र लक्ष्मण! छुड़ावहु बेगि मोहीं।
मार्तण्डवंश यश की सब लाज तोहीं ॥१४॥

शब्दार्थ—रमन=पति। मार्तण्ड वंश=सूर्यकुल। (सीता रावण के ...में पड़ी हुई सहायतार्थ राम और लक्ष्मण को पुकार रही है)।

मूल—पक्षी जटायु यह बात सुनन्त धाई।
देख्यो तुरन्त बल रावण दुष्ट जाई॥
कीन्हों प्रचंड रण पक्ष ध्वजा विहीन।
छोड्यो विपत्ति तब जो बस पक्ष हीन॥१५॥

ा के कुच-युग्म के समान न मानकर दुखी और लज्जित हों, सम्भव है इसी ए वे विरोध मानते हों)।

भावार्थ—सीता के विरह में राम उन्मत्त-से वन-वन भटक रहे हैं, में लक्ष्मण हैं। सीता को खोजते-खोजते वे एक नदी तट पर पहुँचे और उन्होंने एक सुन्दर चक्रवाक के जोड़े को देखा। राम के हृदय में सीता का उमड़ रहा था। चक्रवाक युग्म को देखकर राम को सीता के कुच-युग्म ण हो आये। उन्होंने चक्रवाक के जोड़े से कहा—जब जब तुम सीता को ते थे, तब तब तुम यह सोचकर दुखी होते थे कि हम सीता के कुचों के समान र नहीं हैं। इसलिए उस विरोध को तो तुम भुला दो और यदि तुमने सीता इधर कहीं जाते देखा हो तो कृपा करके मुझे उसका पता बता दो।

छन्द—तोटक।

मूल—शशि के अवलोकन दूरि किये। जिनके मुख की छवि देखि जिये।
कृत चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु बताय सहाय करो ॥१८॥

शब्दार्थ—अवलोकन=देखना। कृत=कृतज्ञता, उपकार।

भावार्थ—विरहावस्था में रामचन्द्रजी चकोर-समूह को देखकर कहते —हे चकोरगण! चन्द्रमा का देखना छोड़कर जिस सीता को मुख-छवि देखकर जीते थे, उस उपकार को स्मरण करो और सीता का पता बतला कर सहायता करो।

अलंकार—अन्योन्य।

मूल—कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै॥
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै ॥१९॥

शब्दार्थ—केतक=केवड़ा। केतकि=केतकी। जाति=चमेली, आम-फल पेड़। तीक्षण=कांटेदार। साधु=सज्जन। सोध=पता। करुना=करुना एक पेड़। करुणामय=दयावान।

भावार्थ—सीता की खोज में वन में भटकते राम करुना नामक वृक्ष देखकर उससे कहते हैं—हे करुणामय करुणा वृक्ष! तुम कृपा करके हमें सीता कुछ पता बतलाओ। तुम साधु प्रकृति के हो, इस कारण तुमसे पूछते हैं। प चुप क्यों हो, उत्तर क्यों नहीं देते? (क्योंकि साधु प्रकृति वाले ही सभी

मूल—मन्द-मन्द धुनि सों घन गाजैं । तूर तार जनु आवझ बाजैं ।
ठौर-ठौर चपला चमकै यों । इन्द्रलोक-तिय नाचति हैं ज्यों ॥२२॥

शब्दार्थ—तूर=तुरही (एक बाजा) । तार=ताल (मंजीरा) । आवझ=
[illegible] । चपला=बिजली । इन्द्रलोक-तिय=अप्सराएं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तूपमा ।

मूल—सोहैं घन स्यामल घोर घने । मोहैं तिनमें बक-पाति मनें ।
संखावलि पी बहुधा जल स्यों । मानो तिनको उगिलै बल स्यों ॥२३॥

भावार्थ—रामचन्द्रजी वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि
[illegible]श में भयंकर काले बादल सुशोभित हो रहे हैं, उनमें उड़ती हुई बगुलों की
[illegible]यां मन को मोहित कर रही हैं । इन्हें देखकर ऐसा मालूम होता है मानो
[illegible] समुद्र से जल पीते समय जल के साथ अनेक शंख भी पी गये हों और अब
[illegible] को वे बलपूर्वक उगल रहे हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा । (केशव की यह कल्पना कितनी सुन्दर है !)

मूल—सोभा अति शक्र-शरासन में । नाना द्युति दीसति है घन में ।
रत्नावलि-सी दिवि द्वार मनो । वर्षागम बाँधिय देव मनो ॥२४॥

शब्दार्थ—शक्र-शरासन=इन्द्र-धनुष । रत्नावलि=रत्नों की बनी झालर
बन्दनवार । दिविद्वार=सुरपुर का द्वार ।

भावार्थ—राम कहते हैं-इन्द्र धनुष कितनी शोभा दे रहा है । बादलों में
[illegible] प्रकार के रंग दिखलाई दे रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है मानों वर्षा के
[illegible] में देवताओं ने सुरपुर के दरवाजे पर रत्नों की झालर बांध रखी हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—घन घोर घने दसहू दिस छाये ।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये ॥
अपराध बिना छिति के तन ताये ।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये ॥२५॥

शब्दार्थ—मघवा=इन्द्र । छिति=पृथ्वी ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं—देखो ! चौतरफ घने बादल छाये हुए
ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई की है और चढ़ाई का
[illegible] यह है कि सूर्य ने बिना अपराध ही पृथ्वी को संतप्त किया है, वह सताया
। इसलिए पृथ्वी के दुःख से दुखित होकर सूर्य को दंड देने के लिए इन्द्रदेव
[illegible] दौड़े हैं ।

भाँति पर-दुख का अनुभव कर सकते हैं)। यदि तुम यह कहो कि इन्हें क्या नहीं पूछा, तो उसका कारण सुनओ। चम्पक से पूछना इसलिए ठीक नहीं समझा कि वह याचक का शत्रु है (वह भौंरे को पास तक नहीं आने देता), वह हमारे दुःख को क्या समझेगा ? अशोक से इसलिए नहीं पूछा वह अशोक (शोक-रहित) है, वह दूसरे के शोक का क्या अनुभव करेगा ? केवड़ा, केतकी, जावफल और गुलाब—इनको काँटेदार जानकर छोड़ दिया क्योंकि जो तीक्ष्ण प्रकृति के होते हैं, वे भयंकर होते हैं। इसलिए हे ... हम आपको ही सज्जन जानकर पूछते हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति से पुष्ट निदर्शना।

मूल—हिमांशु सूर सों लगै सो बात वज्र सों बहै।
दिशा जगै कृशानु ज्यों विलेप अङ्ग को दहै॥
विशेष काल राति सो कराल राति मानिए।
वियोग सीय.का न, काल लोकहार जानिए॥२०॥

शब्दार्थ—हिमांशु=चन्द्रमा। वात=वायु। विलेप=शीतलता देने वाला चंदन कपूर आदि का लेप। कालराति=मृत्यु की रात्रि। कराल=भयंकर। लोकहार=जन-संहारक।

भावार्थ—सीता के विरह से पीड़ित राम लक्ष्मण से कहते हैं—हे लक्ष्मण ! सीता के वियोग के कारण यह चन्द्रमा हमें सूर्य के समान प्रतीत होता है। मलय-पवन वज्र के समान चलती मालूम होती है। दिशाएं, ऐसा लगता है, आग के समान जल रही हों। चन्दन-कपूर आदि का शीतल लेप अङ्ग को जलाता है। और रात तो मुझे काल रात्रि से भी अधिक भयंकर जान पड़ती है। मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह सीता का वियोग नहीं है, इसे संसार-संहारक काल ही जानो।

अलंकार—शुद्धापह्नुति।

छन्द—नाराच।

मूल—देखि राम वरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई।
आसपास तम की छवि छाई। राति दिवस कछु जानि न जाई॥२१॥

शब्दार्थ—तम की छवि छाई=अंधकार छा गया है।

अलंकार—तद्गुण।

मूल—मन्द-मन्द धुनि सों घन गाजैं । तूर तार जनु आवझ बाजैं ।
ठौर-ठौर चपला चमकै यों । इन्द्रलोक-तिय नाचति हैं ज्यों ॥२२॥

शब्दार्थ—तूर=तुरही (एक बाजा) । तार=ताल (मंजीरा) । आवझ=ढा । चपला=बिजली । इन्द्रलोक-तिय=अप्सराएं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तूपमा ।

मूल—सोहैं घन स्यामल घोर घने । मोहैं तिनमें बक-पाँति मनें ।
संखावलि पी बहुधा जल स्यों । मानो तिनको उगिलै बल स्यों ॥२३॥

भावार्थ—रामचन्द्रजी वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि काश में भयंकर काले बादल सुशोभित हो रहे हैं, उनमें उड़ती हुई बगुलों की तियां मन को मोहित कर रही हैं । इन्हें देखकर ऐसा मालूम होता है मानो दल समुद्र से जल पीते समय जल के साथ अनेक शंख भी पी गये हों और अब खों को वे बलपूर्वक उगल रहे हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा । (केशव की यह कल्पना कितनी सुन्दर है !)

मूल—शोभा अति शक्र-शरासन में । नाना द्युति दीसति है घन में ।
रत्नावलि-सी दिवि द्वार मनो । वर्षागम बांधिय देव मनो ॥२४॥

शब्दार्थ—शक्र-शरासन=इन्द्र-धनुष । रत्नावलि=रत्नों की बनी झालर । बन्दनवार । दिविद्वार=सुरपुर का द्वार ।

भावार्थ—राम कहते हैं—इन्द्र धनुष कितनी शोभा दे रहा है ! बादलों में ना प्रकार के रंग दिखलाई दे रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है मानो वर्षा के गमन में देवताओं ने सुरपुर के दरवाजे पर रत्नों की झालर बांध रखी हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—घन घोर घने दसहू दिस छाये ।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये ॥
अपराध बिना छिति के तन ताये ।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये ॥२५॥

शब्दार्थ—मघवा=इन्द्र । छिति=पृथ्वी ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं—देखो ! चौतरफ घने बादल छाये हुए । ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई की है और चढ़ाई का रण यह है कि सूर्य ने बिना अपराध ही पृथ्वी को संतप्त किया है, उसे सताया । इसलिए पृथ्वी के दुःख से दुखित होकर सूर्य को दंड देने के लिए इन्द्रदेव ठ दौड़े हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो । निरघात सबै पवित्र सानो ।
धनु है यह गोरमदाइन नाहीं । सर-जाल बहै, जल-धार वृथाहीं ।

शब्दार्थ—दुंदुभि=रण-नगारे । निरघात=बिजली की कड़क । निरघात=वज्र गिरना । गोरमदाइन=इन्द्र-धनुष । बहै=चलती है ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं—बहुत जोर-जोर से बादल गरज रहे हैं मानो रण-नगारे बज रहे हों । बिजली की कड़क ऐसी मालूम पड़ती है मानो वज्र फेंका जा रहा हो, यह उसी का शब्द हो । यह इन्द्रधनुष नहीं है, साक्षात् इन्द्र का धनुष है और जो जो जलधारा गिर रही है, वह जलधार नहीं बाण-वर्षा है ।

विशेष—उपर्युक्त छन्द में केशव ने जो कल्पना की थी, यह भी इसी से सम्बन्धित है । इन्द्र सूर्य पर चढ़ाई कर रहा है । इसलिए यहाँ वर्षा के ऊपर रण के अंगों का आरोप किया गया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति ।

मूल—भट, चातक दादुर मोर न बोलें ।
चपला चमके न, फिरै खंग खोलें ॥
द्युतिवन्तन कौ विपदा बहु कीन्हीं ।
धरनी कह चन्द्रवधू धरि दीन्हीं ॥२७॥

शब्दार्थ—भट=योद्धा । दादुर=मेढक । खंग=तलवार । द्युतिवन्त=चन्द, शुक्र आदि चमकीले ग्रह । चन्द्रवधू=बीरबहूटी (एक लाल रंग का मखमल सा कीड़ा जो केवल वर्षा ऋतु मे ही देखा जाता है) ।

भावार्थ—(उपर्युक्त प्रसंग के अनुसार वर्षा पर रण का आरोप करते हुए राम कहते हैं)—ये पपीहा, मेढक और मोर नहीं बोल रहे हैं, प्रत्युत ये योद्धा सूर्य को ललकार रहे हैं । यह बिजली नहीं चमक रही है, वरन् तलवार खोले घूम रहे हैं । इन्द्र ने क्रुद्ध होकर केवल सूर्य को ही दंडित नहीं किया है, वरन् अन्य जितने भी प्रकाशमान नक्षत्र हैं, उन पर भी विपत्ति डाली है, यहाँ तक कि चन्द-वधुओं को पकड़ कर पृथ्वी के हवाले कर दिया है, जिससे उन्हें मनमाना दंड देकर अपना बदला चुकाया जाय ।

अलंकार—प्रत्यनीक, अपह्नुति

मूल—तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर में मंद चन्द्र प्रभा सम दीसी॥
बर्षा न सुनी किलकै कल काली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥२८॥

शब्दार्थ—तरुनी=स्त्री (यहाँ अनसूया से तात्पर्य है)। चन्द्र=(१) चन्द्रमा
) सोम नामक अनसूया का एक पुत्र। किलकै=हँसती है। कल=सुन्दर।
हिमाली=(१) महादेव (२) सर्पसमूह। बर्षा=वर्षा काल में सुने जाने वाले
क, मोर, बिजली की कड़क आदि के शब्द।

भावार्थ—रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं—यह वर्षा अत्रि ऋषि की
ी अनसूया सी प्रतीत होती है, क्योंकि जैसे अनसूया के गर्भ में सोम (पुत्र)
प्रभा थी, वैसे ही इस वर्षा में भी बादलों के बीच चन्द्र-प्रभा छिपी है।
र यह है कि जैसे सोम नामक पुत्र के गर्भ में आने से अनसूया के तन में
द प्रभा प्रकाशित हुई थी, वैसे ही वर्षा में बादलों से ढंका चन्द्रमा मंद-मंद
ाश देता है। रामचन्द्रजी पुनः वर्षा की तुलना काली से करते हुए कहते
—ये शब्द जो हो रहे हैं, वर्षाकाल के नहीं हैं, वरन् काली सुन्दर शब्द करती
हँस रही है। जैसे काली की सब महिमा महादेव (अहिमाली) जानते हैं,
ही वर्षा-शब्द की सारी महिमा सर्प-समूह जानता है (क्योंकि वर्षा ऋतु
सर्पों को मेंढक, झिल्ली आदि वस्तु अधिकता से खाने को मिलते हैं)।

अलंकार—उपमा, अपह्नुति, श्लेष।

मूल—भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करि सुख-मुख सुखमा ससी की, नैन—
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सु हंसक सबद सुखदाई है।
अम्बर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है॥२९॥

प्रसंग—रामचन्द्रजी वर्षा का वर्णन कर रहे हैं। प्रस्तुत छन्द के दो
र्थ हैं—एक कालिका-पक्ष में, दूसरा वर्षा-पक्ष में। छात्रों की सुविधा के लिए
नों पक्षों के शब्दार्थ और भावार्थ अलग-अलग दिये गये हैं।

कालिका पक्ष में—

शब्दार्थ—सुरचाप=इन्द्र धनुष । प्रमुदित=उन्नत, पीन । पयोधर=कुच । भूखन=जेवर । तड़ित=बिजली । रलाई=मिली हुई । सुख=सहज । सुखमा=शोभा । निकाई=शोभा । प्रबल=मस्त । करेनुका=हथिनी । स्वच्छन्द ... चाल को छीन लेने वाली । मुकुत=मुक्त, स्वच्छन्द । हंसक-सबद=बिछुओं का शब्द । अम्बर=कपड़ा । बलित=युक्त । नीलकंठ=महादेव ।

भावार्थ—इन्द्रधनुष ही जिसकी सुन्दर भौंहें हैं, घने और बड़े (पयोधर) ही जिसके उन्नत कुच हैं । बिजली की छटा ही जिसके रत्न-आभूषणों की चमक है, जिसने अपनी मुख-शोभा से सहज ही में चन्द्र-मुख की शोभा को दूर कर दिया है, जिसके निर्मल नेत्रों से कमल-दल हीन हो गये हैं (वर्षा ऋतु मे चन्द्रमा मन्द-ज्योति रहता है और कमल शोभाविहीन हो जाते हैं) । केशवदास कहते हैं कि जिसने मस्त हथिनि की चाल छीन ली है (वर्षा मे हाथियों की यात्रा भी बन्द रहती है), बिछुओं का स्वच्छन्द शब्द (झिल्ली आदि का शब्द) सुखदाई है, नीलाम्बर से युक्त होकर जो नीलकंठ महादेव की मति को भी मोहित करती है (कालिका ने नीलाम्बर पहन लिया है और वर्षा मे मेघाच्छन्न आकाश भी नीला रहता है तथा वर्षा मे मयूर मस्त होकर नाचते और बोलते हैं)—ऐसी कालिका देवी (पार्वती) है या वर्षा है—

वर्षा-पक्ष में—

शब्दार्थ—भौ=भय । सुरचाप=इन्द्रधनुष । प्रमुदित पयोधर=हर्षित हुए बादल । भू=पृथ्वी । ख=आकाश । नजराय=दिखाई देती है । ('भूखनजराय' के टुकडे इस प्रकार करिए भू+ख+नजराय) । तड़ित=बिजली । तरलाई=चंचलता । सुख=सहज ही, आसानी से । मुख सुखमा ससी=चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता अर्थात् चाँदनी । नै=नदी । न अमल=स्वच्छ निर्मल नही हैं । कमलदल=कमल की पखुड़ियाँ । दलित=नष्ट । निकाई (नि+काई)=काई रहित । क=जल । प्रबल क=जल की तीव्र धारा । ...हर=बालू को बहाने वाली । गमनहर=आवागमन को बन्द करने वाली । मुकुत=रहित । सुहंसक सबद=सुन्दर हंसों का शब्द । अम्बर=आकाश । बलित=बादलों से युक्त । नीलकंठ=मयूर ।

भावार्थ—हर्षित होती हुई (प्रमुदित) ऐसी वर्षा ऋतु आई है ।

के प्रकार के भय हैं (सर्प, बिच्छु आदि का, वज्रपात आदि का, बाढ़ दि का, मकान आदि गिर जाने का), इन्द्र-धनुप है, उमडी हुई घोर बादलों की घटा है, भूमि तथा आकाश चचल बिजली की चमक से हैं तथा जिसमें चन्द्रमा की सुन्दर प्रभा सहज ही दूर हो गई है अर्थात् द्रमा ज्योतिहीन बन गया है, नदियां स्वच्छ नही हैं और कमल-दल दलित गये हैं। जलाशय काई रहित है। केशवदास कवि कहते हैं कि जल की र धारा ने धूल को बहा दिया है और आवागमन के मार्गों को रोक दिया (इस कारण हम भी सीता की खोज मे इधर-उधर नही जा सकते)। सारा र हंसों के सुखदायक स्वर से रहित है (हस कही चले गये हैं), आकाश दलों से युक्त है, जिसे देख-देखकर मोरो की मति मोहित होती है (वे मस्त कर नाचते एव बोलते है)—ऐसे स्वरूप वाली यह वर्षा आई है अथवा यह निका है।

अलंकार—संदेह से पुष्ट समग पद श्लेप।

छन्द—धनाक्षरी (मनहरण)।

मूल—वर्णत केशव सकल कवि, विपम गाढ़ तम-सृष्टि।
कुपुरुष सेवा क्यों भई, संतत मिथ्या दृष्टि ॥३०॥

शब्दार्थ—विपम गाढ़=अत्यन्त सघन। तम-सृष्टि=अन्धकार की त्पत्ति। सन्तत=निरन्तर। दृष्टि=(१) नजर (२) आशा।

भावार्थ—कवि केशवदास कहते हैं कि वर्षा-काल मे ऐसे घने अन्धकार ी उत्पत्ति होती है जो दृष्टि को सदैव मिथ्या प्रमाणित कर देता है अर्थात् न्धकार के आधिक्य के कारण कुछ का कुछ नजर आ जाता है। जैसे किसी दे मनुष्य की सेवा से कोई आशा फलीभूत नहीं होती है, वैसे ही तमाधिक्य कारण कुछ दिखाई नही पडता।

अलंकार—उदाहरण।

छन्द—दोहा।

मूल—कलहंस, कलानिधि, खंजन, कंज, कछू दिन केशव देखि जिए।
गति, आनन, लोचन, पायन के अनुरूपक से मनमानि लिए॥
यहि काल कराल तें सोधि सबै हठि कै बरसा मिस दूर किए।
अब धौं बिन प्रान-प्रिया रहि हैं कहि कौन हितू अवलम्बि हिए॥३१॥

शब्दार्थ—कलहंस=छोटे और सुन्दर मधुर शब्द बोलने वाले हंस।

कलानिधि = चन्द्रमा । अनुरूपक = समता वाले । शोधि = खोज क
हितू = हितैषी ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी कहते हैं - सीता के वियोग में कलहंस, खंजन और कमलों को देख-देखकर कुछ दिन तक तो मैं जीवित रहा कलहंस में मैं सीता की गति की, चन्द्रमा में सीता की मुख-छवि की, में नेत्र एवं कमलों में पैरों की समता पाकर अर्थात् इन्हें देख-देखकर मैं धारण किये रहा । किन्तु कराल काल से अब यह भी नहीं देखा गया। को तो उसने मुझ से दूर कर ही दिया था, अब वर्षा के बहाने इन धैर्य वाले और दिल बहलाने वाले पदार्थों को भी खोज-खोजकर हठपूर्वक दिया । अब बिना प्रिया के मेरे प्राण किसका अवलम्बन करके रहेंगे।

अलंकार—क्रम ।

मूल—बीते वर्षा काल यों आई शरद सुजाति ।
गये अँध्यारी होति ज्यों, चारु चाँदनी राति ॥३२॥

शब्दार्थ—सुजाति = कुलीन अर्थात् अच्छे कुल की स्त्री। चारु=सु

भावार्थ—कवि केशवदास कहते हैं कि वर्षाकाल बीतने पर सु शरद इस प्रकार आगई जैसे अंधेरी रात बीत जाने पर सुन्दर चाँदनी आजाती है ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—दंतावलि कुंद समान गनो । चन्द्रानन कुंतल भौंर घ
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो । राजीवनि ज्यों पद पानि मनो ॥
हारावलि नीरज होय रमैं । अनुलीन पयोधर अम्बर ।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे । हंसी गति केशव चित हरे ॥

शब्दार्थ—समान = मानयुक्त, गर्वीले । कुंतल = बाल । धनु = धनु राजीव = लाल कमल । नीरज = कुमुद, मोती । पयोधर = बादल, कु अम्बर = आकाश, कपड़ा । पाटीर = चन्दन । जुन्हाइहि = चाँदनी । हंसी हंसों की चाल वाली ।

भावार्थ—शरद को सुन्दरी मानकर वर्णन किया जा रहा है—मानों सफेद कुन्द पुष्प ही इसके दाँत हैं, चन्द्रमा मुख है, भ्रमर-समुदाय ही केश वीरों द्वारा तैयार किये गये या नवीन बनाये गये धनुष ही इसकी भौं (वर्षा ऋतु की समाप्ति पर वीर लोग अपने धनुषों को तैयार करते हैं ।

तीन धनुष बनाते हैं) और लाल कमल इसके हाथ-पाँव हैं। कुमुद-पुष्प या ...ती (जो शरद में उत्पन्न होते हैं) इसके हृदय पर पड़ा हार है। शरद चूं कि कुलोत्पन्ना है, अतः लज्जा से उसने अपने कुचों को (पयोधरों को) कपड़े में अम्बर में) छिपा लिया है (शरदकाल में बादल आकाश में लीन हो जाते —या तो होते ही नहीं या बहुत ही कम होते हैं), चांदनी का ही चंदन उसने अपने तन पर लगा रखा है और यह हंसों की सी मंद-मंद गति से चलती ई चित्त को हरती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

मूल—श्री शरद की दरसै मति सी। लोपे तम ताप अकीरति सी॥
मानौ पति देवन की रति सी। सन्मारग की समझौ गति सी॥३५॥

शब्दार्थ—तम=(१) अन्धकार (२) अज्ञान। ताप=(१) त्रिविध ...प (२) गरमी। अकीरति=(१) अपयश (२) अकर्तव्यता। पतिदेवन ...ी रति सी=पतिव्रता स्त्रियों के सच्चे प्रेम के समान। सन्मारग=(१) धर्म-...ार्ग (२) अच्छे मार्ग। गति=(१) सुगति (२) चाल, यात्रा।

भावार्थ—रामचन्द्रजी शरद की तुलना नारद मुनि की मति से करते ...ये कहते हैं—यह शरद ऋतु नारद मुनि की मति के समान दिखलाई पड़ती ... क्योंकि जैसे नारद की मति से (सम्मति या उपदेश से) अज्ञानांधकार, ...ताप और अपयश का लोप होता है, वैसे ही इस शरद से भी वर्षा का अंध-...ार, सूर्य की गरमी तथा अकर्तव्यता (जो कार्य वर्षा में बन्द हो जाते हैं, शरद ... आने पर वे पुनः चालू हो जाते हैं) का लोप होता है। अथवा इस शरद ...े पतिव्रता स्त्रियों के सच्चे प्रेम के समान समझना चाहिए, क्योंकि जैसे उनके ...म से (पति-भक्ति रूपी चाल से) औरों को सन्मार्ग पर चलने की चाल सूझ ...ड़ती है, वैसे ही इस शरद के आने से सब रास्ते सूझ पड़ने लगते हैं (वर्षा में ...ो मार्ग बन्द हो जाते हैं, वे शरद के आने पर खुल जाते हैं)—अर्थात् अब ...में भी सीता की खोज में आगे बढ़ना चाहिए।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

मूल—लक्ष्मण दासी वृद्ध सी आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन को हमहिं, बीते बरषा राति॥३६॥

भावार्थ—राम कहते हैं—हे लक्ष्मण ! वर्षा रूपी रात्रि के बीत जाने

ानजी इस पार सुन्दर नामक पर्वत पर से उछले और उस पार सुबेल
क पर्वत पर जा गिरे।
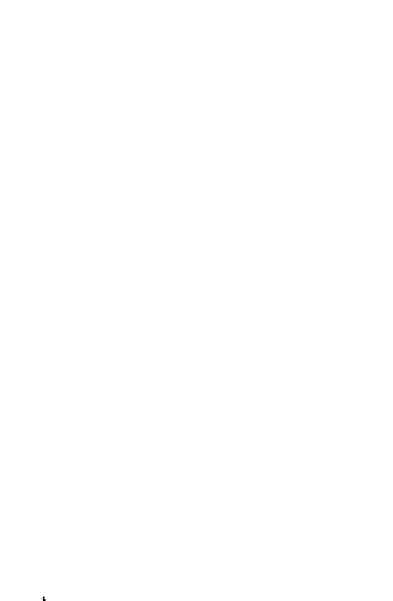
भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि विष्णु भगवान के वाहन गरुड के
न या ब्रह्मा के वाहन स्वर्ण-हंस के समान आकाश रूपी नीली कसौटी पर
ी रेखा खींचते हुए हनुमानजी अति वेग से लंका की ओर उड़ गये,
रा तेज के खजाने हनुमान रामचन्द्रजी की मुद्रिका रूपी विमान पर चढकर
गये, अथवा ऐसा प्रतीत होता था मानो नि शक रावण को मारने के लिए
राण का बाण छूटा हो, अथवा सुन्दर नामक पर्वत रूपी हाथी के गाल पर
ला भौंरा उड़कर सीताजी के निष्कलङ्क चरण-कमल की ओर उड़ा जा
हो, या आकाश में कोई आतिशबाजी छूटी हो, या तोप में से कोई गोला
ल कर जा रहा हो—इस प्रकार वेग से हनुमानजी लङ्का की ओर उड़े।

अलंकार—उपमा और रूपक से पुष्ट सदेह।

छन्द—मनहरण कवित्त।

मूल—उदधि नाकपति-शत्रु को, उदित जानि बलवन्त।
अन्तरिच्छ ही लच्छि पद अच्छ छुयो हनुमन्त ॥२॥

शब्दार्थ—नाकपति शत्रु=मैनाक पर्वत (हिमालय का पुत्र)। उदित=
ा हुआ। अन्तरिच्छ ही=आकाश ही मे। लच्छि=देखकर। अच्छ पद=
टरूपी चरण से।

भावार्थ—बलवान हनुमान ने समुद्र में विश्राम देने हेतु मैनाक पर्वत
(जो इन्द्र के भय के मारे समुद्र मे छिपा रहता है) उठता हुआ देखकर
ाश ही से केवल दृष्टि रूपी पैर से उसका स्पर्श किया—वहाँ उतर कर
ंने विश्राम नहीं किया।

अलंकार—पद अच्छ (अच्छ पद) में रूपक।

मूल—बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लील लियो हनुमन्त तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥३॥

शब्दार्थ—सुरसा=साँपों की माता। सिंहिका=राहु की माता, छाया-
हणी राक्षसी। कढ़े=निकले।

भावार्थ—आधा मार्ग तै करने पर हनुमानजी को साँपो की माता
सा मिली जिसने हनुमानजी को मार्ग मे रोक लिया। तदनन्तर सिंहिका

मूल—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हो ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मो हो।
पठिए केहि कारण, कौन चले हो ?
सुर हो किधौं कोउ सुरेश भले हो ॥५॥
हम वानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुणी अवलोकन आये॥
हति मोहि महामति भीतर जैये।
तरुणीहि हते कब लौं सुख पैये ॥६॥

भावार्थ—लंका नाम की राक्षसी हनुमानजी से कहती है—मुझे बताओ, कौन हो, जो मुझे उलांघ कर जाना चाहते हो ? तुम अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण किये हुए मेरे मन को मोहित करते हो। तुमको यहां किसने भेजा है और किस कारण भेजा है, बताओ ? तुम कोई देवता हो या देवताओं के राजा इन्द्र हो। हनुमानजी लंका को बताते हैं कि मै वानर हूं और रामचन्द्रजी के द्वारा यहां उनकी पत्नी (सीता) की खोज करने के लिए भेजा गया हूं। इस पर लंका कहती है कि हे महामति वानर! तुम मुझे मार कर ही लंका के अन्दर प्रवेश कर सकते हो। तब हनुमानजी लंका से कहते हैं कि स्त्री को मार कर मुझे क्या सुख मिलेगा ?

अलंकार—'सुर हो ....भले हों' मे सन्देह अलंकार।

मूल—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहो।
हठ कोटि करौ, घरहीं फिरि जैहो ॥
हनुमन्त बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही वर नारी ॥७॥

भावार्थ—लंका राक्षसी हनुमानजी से कहती है कि तुम मुझे मार कर लंका मे प्रवेश करोगे (मै जीते जी तुम्हें भीतर नही जाने दूंगी)। तुम चाहे जितना आग्रह करो, तुम्हें निराश होकर घर ही लौटना पड़ेगा। तब बलवान हनुमान ने उसके गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया जिससे वह राक्षसी ने राक्षसी स्वरूप को छोड़कर एक सुन्दर स्त्री बन गई।

मूल—जबर पुरी ही रावन लीन्हीं। बहु विधि पावन के रस भीनी।
चतुरानन चित चिन्तन कीन्हों। जब करुणा करि मो कहँ दीन्हों॥
जब वानर हैं सिया हरि लैहै। हरि हनुमन्त बिलोकन दैहै॥

(सीता न मिलने पर)। उन्होंने सारी लंकापुरी को छान डाला, पर उन्हें सीता न मिली, इसलिए बिना सीता के उनको वह पुरी सूनी-सी दिखलाई दी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कहूं किन्नरी किन्नरी लै बजावें।
सुरी आसुरी बांसुरी गीत गावें॥
कहूं यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावें।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावें॥१३॥

शब्दार्थ—किन्नरी=किन्नर देवताओं की कन्याएं। किन्नरी=सारंगी। सुरी=देव-कन्याएँ। आसुरी=राक्षस कन्याएं। पक्षिणी=मैना आदि। नगी-कन्यका=पार्वत्य प्रदेश की कन्याएँ। पन्नगी=नाग-कन्याएँ।

भावार्थ—हनुमानजी ने देखा—कहीं किन्नर कन्याएँ सारंगी लिये बजा रही हैं, कहीं देव-कन्याएँ और राक्षस-कन्याएँ बांसुरी में गीत गा रही हैं। कहीं यक्ष-कन्याएँ मैना आदि को पढ़ा रही हैं और कहीं पर्वत प्रदेश की कन्याएँ नाग-कन्याओं को नचा रही हैं—इस प्रकार रावण के महल में अनेक राग-रंग हो रहे हैं।

अलंकार—यमक।

मूल—पियें एक हाला गुहैं एक माला।
बनी एक बाला नचैं चित्रशाला॥
कहूं कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावें सुवा लै सुकी सारिका को॥१४॥

शब्दार्थ—हाला=मद, शराब। चित्रशाला=नाचघर, रंगशाला। कोक की कारिका=कोक शास्त्र की पंक्ति। कोकिला=कोयल, कोकिल बैनी स्त्रियां। सुकी=सुग्गी, तोती। सारिका=मैना।

भावार्थ—हनुमानजी ने देखा—कहीं कोई स्त्री मदिरा-पान कर रही है, कोई माला गूँथ रही है, कोई बन-ठन कर रंगशाला में नृत्य कर रही है। कहीं कोई कोकिल-बैनी स्त्री तोता, तोती और मैना को एक साथ कामशास्त्र की बातें (कोकशास्त्र के मंत्र-आलिंगन, चुम्बन आदि) पढ़ा रही है।

मूल—फिरयो देखि कै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझि कै वाटिका की प्रभा को॥

भावार्थ—रावण सीता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सीता के सामने राम के अवगुणों का बखान करता है। वह कहता है—तेरा पति कृतघ्नी है—तू तो सहानुभूति से उनके साथ वन में आई और उसने तुझे यहाँ अकेली छोड़ दिया और शिकार करने लगा, तेरी उसने कुछ भी परवाह न की। राम कृपण भी है—तुझे अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण नहीं देता। वह कुकन्याओं को (शबरी आदि को) चाहता है—परस्त्री-गामी है। सदा वन में रहने वाले तथा मुडधारी साधुओं का हितैषी है, वह उन्हें चाहता है (तुझ जैसी सुन्दरी से वह कैसे प्रेम करेगा)। उसके पास राजसी ठाट-बाट कुछ नहीं है। मैंने सुना है कि वह अनाथ है (निराश्रय है) और अनाथों का आश्रयी है (बड़े लोगों से या राजा-महाराजाओं से उसका कोई मेल नहीं है)। उसके चित्त में तो सदा जटाधारी, दडी, मडी साधु बसे रहते हैं वह तुझ जैसी स्त्री की कदर करना क्या जाने ?

दूसरा अर्थ—(भक्ति-पक्ष में)—"राम कृतघ्नी हैं (भक्तों के अच्छे-बुरे सब कर्मों को नाश करने वाले हैं)। वे कुदाता हैं (पृथ्वी, राजपाट आदि का दान करने वाले हैं) और वे कुकन्या (सीता) को चाहते हैं। वे नंगे, दंडी और मुंडी साधुओं के परम हितू हैं। वे स्वयं अनाथ हैं (पूर्ण स्वतत्र, जिसका कोई भी स्वामी नहीं है) और अन्य अनाथों को वे आश्रय देते हैं। वे सदा-जटाधारी एवं मुंडधारी साधुओं के चित्त में बसते हैं अर्थात् वे सदा राम का ध्यान किया करते हैं।"

अलंकार—श्लेष और व्याज स्तुति।

मूल—तुम्हें देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महा निर्गुणी नाम ताको न लीजै॥
सदा दास मो पै कृपा क्यों न कीजै॥२२॥

शब्दार्थ—उदासीन=तटस्थ। निर्गुणी=गुणहीन, मूर्ख।

भावार्थ—रावण कहता है—हे देवि! तुम्हारा पति राम उसको अपना हितू समझता है जो तुम्हारे में दोष निकालते हैं—तुम्हारी निन्दा करते हैं इसलिए तुम उसको अपनी ओर से उदासीन ही समझो (यदि वह तुम्हारे से उदासीन न होता तो वह तुम्हारी निन्दा कैसे सहन करता?)। वह गुणहीन है—उसमें एक भी गुण नहीं है, ऐसे व्यक्ति का तो नाम भी नहीं

शब्दार्थ—गंभीर=निर्भीकता से। न भासैं=शोभित नहीं होते। बापुरा=बेचारा। रूद्र=महादेव। स्यों=सहित।

भावार्थ—सीता ने एक तिनका बीच में देकर (क्योंकि पतिव्रता पर-पुरुष से संभाषण नहीं करती) रावण को निर्भीकता-पूर्वक उत्तर दिया—हे रावण ! तू क्या और तेरी राजधानी क्या, राम से बैर करके तो महादेव और ब्रह्मा भी शोभा नहीं पा सकते अथवा उनकी भी हिम्मत नहीं है कि वे राम से बैर करें, तू बेचारा निशिचर तो है ही किस गिनती में ? यदि तू ऐसा करने की ठानता है तो तू क्यों न समूल नष्ट होगा ?

मूल—अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥
बिड़कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै।
सिव-सिर-ससि-श्रीको राहु कैसे सो छीवै॥२५॥

शब्दार्थ—तनु=बारीक, क्षीण। नाकी=उलांघी गई। खर=प्रखर, तीक्ष्ण। बिड़कन=गलीज पदार्थों के कण। घन=बहुत। ससिश्री=चन्द्रमा की शोभा। छीवै=स्पर्श करे।

भावार्थ—सीता रावण को कहती है—हे रावण ! जिनके द्वारा खींची गई एक क्षीण-सी धनु-रेखा तुम से जरा सी भी नहीं लांघी गई, उनके तेज बाणों की तीक्ष्ण धारा को तू कैसे सहन करेगा ? अरे ! क्या बाज पक्षी घूरे पर पड़े गलीज-कणों को खाकर जीवित रहेगा ? (अर्थात् तेरा सब राज वैभव मेरे लिए विष्ठावत् है) और याद रख, तू मुझे इसी तरह नहीं छू सकता है जैसे शिवजी के मस्तक पर विराजमान चन्द्रमा की शोभा को राहु नहीं छू सकता।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति से पुष्ट दृष्टान्त।

मूल—उठि उठि सठ ह्याँ तें भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौं न लागे।
बिकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निपट मृतक तोकौं रोष मारै न मेरो॥२६॥

शब्दार्थ—बिसर्पी=तेज चलने वाले। आसु=शीघ्र। तौलौं=तब तक।

भावार्थ—सीता रावण से कहती है—हे अभागे ! हे दुष्ट ! उठ और यहाँ से तब तक भागकर अपने प्राणों की रक्षा करले जब तक मेरे शीघ्रगामी वचनरूपी सर्प तेरे पीछे न लगें। मैं शीघ्र ही कुल-सहित तेरा नाश देख रही

शब्दार्थ—सुमित्रानन्द=लक्ष्मण । सक्त=शक्तिशाली । श्री=श्रीवत्स चिह्न । लसंति=शोभित होता है । द्युति=प्रकाश । पूजै=पहुँचना, बराबरी करना ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—आँसु बरसि हियरे हरषि, सीता सुन्दर सुभाइ ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरनति है बहु भाइ ॥४०॥

भावार्थ—मुद्रिका प्राप्त होने पर सीता के नेत्रों से प्रेमाश्रु आगये और उनका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ । तब सुन्दर स्वभाववाली सीता ने अपने प्रियतम राम की मुद्रिका को देख-देखकर अनेक प्रकार से उसका वर्णन किया ।

मूल—यह सूर किरण तम दुःखहारि ।
ससि कला किधौं उर सीतकारि ॥
कल कीरति सी सुभ सहित नाम ।
कै राज्यश्री यह तज्यो राम ॥४१॥

शब्दार्थ—सीतकारि=शीतल करने वाली । सहित नाम (राम के नाम सहित) ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी की मुद्रिका पाकर सीता विविध रूपों से उस पर विचार करती है—यह मुद्रिका सूर्य की किरण है, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य की किरण अन्धकार को हर लेती है, उसी प्रकार इस मुद्रिका ने भी मेरे सब दुःख को हर लिया है । अथवा यह मुद्रिका चन्द्रमा की कला है, क्योंकि यह मेरे हृदय को शीतल कर रही है—इसे पाकर मेरी विरह-ज्वाला बहुत कुछ शान्त हो गई है । अथवा यह नाम सहित श्रीराम की सुन्दर कीर्ति है, क्योंकि जैसे श्रीराम के नाम-स्मरण या कीर्ति-श्रवण से जीव को आनन्द प्राप्त होता है, वैसे ही यह मुद्रिका मुझे आनन्द दे रही है अथवा राम ने इस मुद्रिका को भी राज्यश्री का चिह्न समझकर राज्य के समान त्याग दिया है ।

अलंकार—सन्देह से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

मूल—कै नारायण उर लस लसंति ।
सुभ अंकन ऊपर श्री वसंति ॥
कर विद्याश्री आनन्द दानि ।
दुख अनुभावन भय शिवा वानि ॥

शब्दार्थ—लसंति=सुशोभित होना । अंकन=(१) अलंकार, उर

पूछा दे अथवा इसको हमारे हृदय की थाह लेने के लिए भेजा गया है—हम अपने पतिव्रत धर्म पर दृढ़ हैं वा नहीं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट सदेह।

मूल—सुखदा सिखदा अर्थदा, जशदा रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ॥४५॥

शब्दार्थ—अर्थदा=धन देने वाली, प्रयोजन पूर्ण करने वाली। रसदातारि=आनन्द देने वाली।

भावार्थ—सीता मुद्रिका के सम्बन्ध में कहती है कि यह रामचन्द्रजी की मुद्रिका है या कोई परमहित करने वाली गुरु स्त्री (सास, माता, धाय आदि) है। क्योंकि जैसे कोई गुरु स्त्री अपनी बधू या पुत्री के सुख, शिक्षा, प्रयोजन (अथवा धन), यश और आनन्द अथवा आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध करती है, वैसे ही यह मुद्रिका भी मुझे सुख पहुँचाती है, शिक्षा देती है, प्रयोजन-सिद्धि में सहायक है, राम का यशोगान करती है और राम-मिलन की सूचना देती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट सदेह।

मूल—बहु वर्ण सहज प्रिया, तम गुण हरा प्रमान।
जग मारग दरसावनी, सूरज किरन समान ॥४६॥

शब्दार्थ—बहुवर्णा=(१) अनेक रंगवाली (सूर्य की किरणों मे सात रंग होते हैं) (२) अनेक अक्षर वाली (मुद्रिका पर 'श्रीरामो जयति' छः अक्षर लिखे थे)। सहजप्रिया=स्वाभाविक रूप से प्रियतम गुण हरा=(१) अंधकार हरने वाली (२) दुःख हरने वाली।

भावार्थ—सीता कहती है कि यह मुद्रिका सूर्य-किरण के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें अनेक वर्ण (रंग) वाली होती हैं, स्वाभाविक रूप से प्रिय लगने वाली और अंधकार को दूर करने वाली होती हैं तथा निश्चय-पूर्वक संसार के विभिन्न मार्गों, सड़कों आदि का ज्ञान कराने वाली होती हैं, उसी प्रकार यह मुद्रिका भी बहुवर्णी (अनेक अक्षरों) वाली, सहजप्रिया, तमगुण हरा (दुःख या अज्ञान को हरने वाली) है और यह मुझे अपने कर्तव्य-मार्ग का बोध कराती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट समुच्चयोपमा।

मूल—श्रीपुर में, बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करि है परतीति ॥४७॥

अब स्त्रियों पर कौन विश्वास करेगा ? क्योंकि राज्यलक्ष्मी ने अयो
वन में और तूने मार्ग में राम को धोखा दिया है—(राज्य लक्ष्मी,
मुद्रिका तीनों ही स्त्रियां हैं जिन्होंने राम का साथ छोड़कर उन्हें धोखा

मूल—कहि कुशल मुद्रिके ! राम-गात । पुनि लक्ष्मण सहित समान
यह उत्तर देति न बुद्धिवन्त ! केहि कारण धौं हनुमन्त सं

शब्दार्थ—सहित = हितैषी । समान=मान-सहित । तात=देवर ।
सज्जन ।

भावार्थ—सीता मुद्रिका को सम्बोधित कर प्रश्न करती है—हे
कहो, राम शरीर से तो कुशल हैं ? फिर ये बतलाओ कि मेरे परम
और स्वाभिमानी देवर लक्ष्मण तो सकुशल हैं ? हे बुद्धिमान और
हनुमान ! यह मुद्रिका मेरे प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देती है ?

मूल—तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम ।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ॥४२

भावार्थ—सीता के द्वारा किये गये उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर हनु
अनुराई से दे रहे हैं—हे माता ! तुम इसे मुद्रिका के नाम से संबोधि
पूछती हो, इससे यह चुप है (यह समझती है कि मुझसे नहीं पूछा जा र
क्योंकि तुम्हारे वियोग में राम ने इसको कंकण (हाथ में पहनने का क
पदवी प्रदान कर दी है (तुम्हारे वियोग में राम इतने दुबले हो गये हैं
अब इस मुद्रिका को कंकणवत् हाथ में पहनते हैं) । इसलिए यह मुद्रिका
को कंकण समझती है और इसी नाम से यह बोलती है, मुद्रिका के नाम
क्यों बोलने लगी ?

अलंकार—अन्य ।

विशेष—सीता-विरह में राम के क्षीण शरीर होने की सुन्दर अ

मूल—दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बन करी ज्यों कँपत हैं ।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चन्द चितै चौगुनो चँपत हैं ॥
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत हैं ।

और क्यों भंवत वन जोगी क्यों जगत रैनि,
साकत क्यों राम नाम तेरोई जपत हैं ॥५०॥

शब्दार्थ—दरीन=गुफाएं। केसरी=(१) सिंह (२) केशर, केशर की क्यारी। करी=हाथी। वासर की सम्पति=दिन का प्रकाश। केका=मोर का शब्द। ब्याल=सर्प। घनश्याम=खूब काले। घोरन=गर्जन। भंवत=भ्रमण करना। जवासा=एक पौधा जो वर्षा काल में जल जाता है ('अर्क जवास पात बिनु भयऊ'—तुलसी)। साकत=शक्ति का उपासक, शाक्त धर्मावलम्बी।

भावार्थ—हनुमानजी सीता के सम्मुख राम की विरह-दशा का वर्णन करते हैं—हे माता! तुम्हारे विरह में राम वन-शोभा नहीं देखते, वे सिंह के समान बड़ी-बड़ी गुफाओं में निवास करते हैं, और केशर की क्यारियों को देख कर वे ऐसे भयभीत हो जाते हैं जैसे जंगली हाथी केसरी (सिंह) को देखकर डर जाता है। दिन का प्रकाश उन्हें इसी तरह अच्छा नहीं लगता जैसे उलूक पक्षी को (दिन में वे सुस्त पड़े रहते हैं) और रात्रि में चन्द्रमा को देखकर वे चकवे की भांति व्याकुल होने लगते हैं (केशर में सीता का वर्ण-साम्य पाकर और चन्द्रमा के मुख-साम्य पाकर राम व्याकुल हो जाते हैं)। मोरों की ध्वनि को सुनकर (क्योंकि वे प्रिया की स्मृति को उद्दीप्त करते हैं) वे सर्प की भांति विलीन हो जाते हैं (मोर सांप को खा जाता है, इसलिए मोर की आवाज सुनकर सांप बिलों में घुस जाते हैं, इसी तरह राम भी मोरों की वाणी सुनकर कन्दराओं में छिप जाते हैं। काले बादलों की गर्जन सुनकर वे जवासे की भांति सन्तप्त हो उठते हैं। वे आपके वियोग में भौंरे की तरह वन में भ्रमण करते रहते हैं और रात्रि में वे योगियों की भांति जागते रहते हैं (रात्रि को उन्हें नींद नहीं आती) और शक्ति के उपासक की भांति वे सदा आपके नाम का जाप किया करते हैं।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उल्लेख।

छन्द—मनहरण कवित्त।

मूल—दुख देखे सुख होइगो, सुक्ख न दुःख-विहीन।
जैसे तपसी तप तपे, होत परम पद लीन ॥५१॥

भावार्थ—हनुमान सीता को राम का संदेश सुनाते हैं। वे कहते हैं कि राम का यह कहना है कि दुःख के बाद अवश्य सुख प्राप्त होगा, क्योंकि बिना दुःख के सुख की स्थिति ही नहीं है, (इसलिए धैर्य रखना आवश्यक है)। जिस

प्रकार तपस्वी पहले तप करने में अनेक कष्टों को झेलता है, तब उस पद (मुक्ति) की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार दुःख झेलने पर मिलता है।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास ।

मूल—वर्षा वैभव देखि कै देखो सरद सकाम ।
जैसे रनमें काल भट, भेंटि भेंटियत बाम ॥२२॥

शब्दार्थ—सकाम=उत्कट इच्छायुक्त । बाम=देवांगना । भट=

भावार्थ—हनुमान कहते हैं—हे माता ! राम ने वर्षा का वैभ कर अब कामनायुक्त हृदय से शरद को देखा है (आपकी खोज का का के कारण उन्हें बन्द करना पड़ा, किन्तु अब शरद आगई है, सब मार्ग हैं, वे शीघ्र ही आपके पास आयेंगे)। वर्षा के बाद शरद राम को प्राप्त हुई है जैसे किसी योद्धा को रण में पहले काल रूपी भट से भेंट पड़ती है अर्थात् मरना पड़ता है, तदनन्तर देवांगनाओं से उसकी भेंट हो

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—दुःख देखि कै देखि हौं, तव मुख आनन्द कंद ।
तपन ताप तपि द्यौस निशि, जैसे शीतल चंद ॥२३॥

शब्दार्थ—तपन=सूर्य । द्यौस=दिन ।

भावार्थ—हनुमान कहते हैं—माता ! राम ने कहा है कि दुःख कर मैं फिर तुम्हारे आनन्दमय मुख को देखूंगा, ठीक इस प्रकार जिस कोई दिन भर सूर्य की गरमी से तपकर रात्रि के समय चन्द्रमा की चांदनी का अनुभव करता है।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—अपनी दशा कहा कहौं दीप दशा सी देह ।
जरत जाति जागर निशा, बैराग्य सहित सनेह ॥२४॥

शब्दार्थ—दशा=हालत । दीप-दशा=दीपक की बत्ती । सनेह=(१)
(२) तैल ।

भावार्थ—हनुमान कहते हैं—माता ! राम कहते हैं कि मैं अपनी का क्या वर्णन करूँ ? मेरा शरीर तो तुम्हारे विरह में दीपक की बत्ती समान रात दिन जलता रहता है। (दीपक की बत्ती स्वयं भी जलती है

प में स्नेह (तेल) को भी जलाती है, उसी तरह मैं तुम्हारे विरह में स्नेह
र शरीर दोनों से क्षीण होता रहता हूँ) ।

अलंकार—उपमा और श्लेष से पुष्ट व्यतिरेक ।

मूल—कछु जननि दे परतीति जासों रामचन्द्रहि पावहीं ।
तुम सीस की मनि दई, यह कहि, सुयश तव जग गावहीं ॥
सब काल हूँ हो अमर अरु तुम समर जयपद पाइ हौ ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइ हौ ॥२५॥

शब्दार्थ—परतीति=विश्वास । सीस की मनि=चूड़ामणि । जयपद=
जय ।

भावार्थ—(अब हनुमान सीता से कोई ऐसा चिह्न देने को कहते हैं
सको देखकर राम को विश्वास हो जाय कि हनुमान ने सचमुच सीता का
ता लगा लिया है और उससे वह भेंट कर चुका है ।) हनुमान कहते हैं—
माता ! तू मुझको अपनी कोई ऐसी वस्तु दे जिससे रामचन्द्रजी को विश्वास
हो जाय । तब सीता ने हनुमान को अपनी चूड़ामणि उतार कर दे दी और
हा कहा—'सारा संसार तेरा सुयश गायेगा, तू सब कालों मे अमर रहेगा और
द्ध में सदा तुझे विजय मिलेगी और हे बेटे ! आज से तू राम का परम भक्त
कहलायेगा ।'

मूल—कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो ।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि संहारियो ॥
रन मारि अक्षकुमार बहु बिधि इन्द्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्म सस्त्र प्रमान मानि सो बस्य भो मन शुद्ध कै ॥२६॥

शब्दार्थ—उपवन=वाटिका । कोरि=करोड़ । किंकर=नौकर, सेवक ।
जंबुमाली=रावण के प्रहस्त नामक मंत्री का पुत्र । अक्षकुमार=अक्षयकुमार
(रावण के एक पुत्र का नाम) । इन्द्रजित=मेघनाद (रावण का पुत्र) ।
ब्रह्मशस्त्र=ब्रह्मपाश (एक अस्त्र) । बस्य भो=वश में हो गया ।

भावार्थ—(सीता के द्वारा दी गई चूड़ामणि लेकर, सीता से विदा
होकर जाते समय हनुमान ने क्या-क्या किया, उसी का वर्णन इस छन्द में
किया गया है) । जाते समय पैरों में पड़कर एवं हाथ जोड़कर हनुमान ने
माता जानकी को प्रणाम किया । फिर उसने अशोक वाटिका के वृक्षों को तोड़
डाला और रावण के करोड़ों सेवकों को मार डाला । फिर उसने प्रहस्त नामक

बनी के पुत्र अक्षयकुमार को तथा अन्य पाँच मंत्रियों को मार [illegible]
हनुमान ने अक्षयकुमार का वध करके मेघनाद से अनेक प्रकार का [illegible]
जब मेघनाद ने हारकर अन्त में हनुमान पर ब्रह्म-पाश फेंका, तब
मन से (किसी भय से नहीं) उस ब्रह्म पाश में बंध गये (क्योंकि
ब्रह्मपाश में नहीं बंधते तो ब्रह्मा की अवज्ञा होती।)

छन्द—हरिगीतिका।

मूल— रे कपि कौन तू ?' 'अक्ष को घातक,
दूत बली रघुनन्दन जू को।'
'को रघुनन्दन रे ?' 'त्रिशिरा—
खरदूषण दूषण भूषण भू को'॥
'सागर कैसे तर्यो ?' 'जैसे गोपद'
'काज कहा ?' 'सिय-चोरहि देखौं'।
'कैसे बंधायो ?' 'जो सुन्दरि तेरी
छुई दृग सोवत पातक लेखौं' ॥२७॥

शब्दार्थ—घातक=मारने वाला। दूषण=नाश करने वाले, मारने
गोपद=गाय के खुर जितना गड्ढा।

भावार्थ—(ब्रह्म-पाश में बंध जाने पर हनुमानजी को रावण के
प्रस्तुत किया गया)—यहाँ रावण पूछता है—रे कपि ! तू कौन है ? हनु
जी उत्तर देते हैं—मैं अक्षयकुमार को मारने वाला हूँ और मैं बलवान राम
जी का दूत हूँ। पुनः रावण का प्रश्न है—कौन रामचन्द्र ? उत्तर है—जि
त्रिशिरा और खरदूषण का वध किया है और जो इस पृथ्वी के आभूषण
पुनः प्रश्न है—तुमने समुद्र कैसे पार किया ? हनुमान उत्तर देते हैं—
गोपद को। रावण ने फिर पूछा—तुम यहाँ किस लिए आये हो ? उत्तर है—
सीता के चोर को ढूंढने के लिए। तब रावण हनुमान से कहता है कि (
तो तुम इतनी बड़ी-बड़ी करते हो, फिर) तुम ब्रह्मपाश में कैसे बंध गये !
इसका उत्तर हनुमान इस प्रकार देते हैं—तेरी सोती हुई स्त्री को मैंने आंखों
स्पर्श कर लिया था, इस पाप के कारण मुझे बन्दी बनना पड़ा।

अलंकार—गूढोत्तर।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

विशेष—व्यंग्य यह है कि [illegible]

[illegible]ब इतना पाप लगता है कि हनुमान जैसे बाल-ब्रह्मचारी को ब्रह्मपाश में बंधना [illegible]ड़ा, तब रावण जैसे दुष्ट को तो (जो परस्त्रियों का अपहरण करके ले आता [illegible]और वह भी बुरी नीयत से) क्या परिणाम भोगना होगा ?

मूल—कोरि कोरि यातनानि फोरि फारि मारिए।
काटि काटि फारि मांस बांटि बांटि डारिए।
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूंजि भूंजि खाहु रे।
पौरि टांगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥५८॥

शब्दार्थ—कोरि=करोड़ो। पौरि=द्वार पर। रुंड=धड़ (सिर रहित [illegible]रीर)

भावार्थ—रावण हनुमान जी के लिए दंड-व्यवस्था देता है—देखो ! [illegible]से दुष्ट वानर को करोड़ों प्रकार की यातनाएं दो, इसे फोड़-फाड़ कर मार [illegible]ालो; इसके मांस को काट-काट कर आपस में बांट लो, इसकी चमड़ी उधेड़ [illegible]ालो और इसकी हड्डियों को भून भून कर खा डालो। इसको द्वार पर लटका [illegible]ो और इसके रुंड मुंड को लेकर भाग जाओ—(कोई इसका रुंड लेकर और [illegible]ोई इसका मुंड लेकर)। इन दंडों में से इसे कोई भी दंड दे दो।

छन्द—चामर।

मूल—दूत मारिए न राज राज छोड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूछि कैसो और दंड कीजई॥
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बूंद सूखिगे कहा महासमुद्र छीजई ॥५६॥

भावार्थ—(दूत अवध्य होता है, इसलिए विभीषण रावण को सम[illegible]ाने का प्रयास करता है)। वह कहता है—हे राजाओं के राजा ! यह वानर [illegible]त है, इसलिए इसे छोड़ दीजिए (मारिये नहीं) आप अपने मंत्रियों एवं मित्रों [illegible]े पूछ कर इसे अन्य कोई दंड दीजिए। एक क्षुद्र दूत को मार कर आप बड़ा [illegible]ारी कलंक क्यों लगाते हैं ? समुद्र में से एक बूंद को सुखा देने से क्या समुद्र [illegible]ट जायगा ? (क्या एक वानर को मारने से राम की सेना कम हो जायगी ?)

छन्द—चामर।

अलंकार—दृष्टान्त।

मूल—तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससो।
लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसौ॥

को उठता देखकर घोड़े, हाथी, मैना, तोते, मोर आदि पालतू पशु-पक्षी होकर इस तरह शोर से भागने लगे जैसे विपत्ति पड़ने पर नीच व्यक्ति स्वामी को छोड़कर भाग जाते हैं और ऐसा करने में उन्हें कोई लज्जा आती।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—अटी अग्नि-ज्वाला अटा सेत है यों।
सरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजै।
मनो स्वर्ण की किंकणी नाग साजै॥६२॥

शब्दार्थ—अटा=महल, अट्टालिका। नाग=हाथी।

भावार्थ—कवि कहता है कि लंका की सफेद अट्टालिकाएं अग्नि की ों से घिर कर ऐसी लग रही थीं मानो संध्या के समय शरद ऋतु के र ही हों। लपटों से युक्त धूम-समूह (धुए के घौरहर) ऐसे जान पड़ते थे बड़े-बड़े हाथियों ने सोने की किंकणी (करधनी) पहन रखी हो।

छन्द—भुजंग प्रयात।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा।

मूल—कहूं रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनो ईश रोषाग्नि में काम डाढ़े॥
कहूं कामिनी ज्वाल मालानि भोरें।
तजे लाल सारी अलंकार तौरें॥६३॥

शब्दार्थ—रैनिचारी=राक्षस। गहे ज्योति गाढ़े=तेज लपटों में जलते ईश=महादेव। भोरें=धोखे मे। अलंकार=सोने के आभूषण।

भावार्थ—कहीं कोई राक्षस अग्नि की प्रखर लपटो मे पड़ा इस तरह रहा है मानो महादेव की कोपाग्नि मे कामदेव ही जल रहा हो। कहीं त्रियां अग्नि-ज्वालाओं से इतनी भयभीत होगई हैं कि वे ज्वालाओं के धोखे अपनी लाल रंग की साड़ी उतार कर फेंक देती हैं और अपने सोने के आभू- ों को तोड़ डालती हैं।

छन्द—भुजंगप्रयात।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और भ्रम।

मूल—कहूं भौन राते रचे धूम छाही।
लगी सूर मानो लगी मेघ माही॥
जरै शस्त्रशाला मिली गंध-माला।
मलै अद्रि मानो लगी दाव-ज्वाला॥६४॥

शब्दार्थ—राते=लाल। (लंका के भवन सोने के बने थे, लाल रंग के थे)। रंचे=रंग से रंगे हुए। मलै अद्रि=मलय पर्वत ज्वाला=वन की अग्नि (दावानल)।

भावार्थ—केशव वर्णन करते हैं कि कहीं लाल रंग से चित्रित भवनों पर धुमा छा गया है, जिससे वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमा बादलों से ढ़क दिये गये हों। रावण का शस्त्रागार जल रहा अनेक प्रकार की मिली हुई गंध निकल रही है—ऐसा जान पड़ता मलय पर्वत पर दावाग्नि लग गई हो। (मलय पर्वत दावाग्नि लगने के वृक्ष जलते हैं, जिससे सुगंध फैलती है, पर चन्दन के वृक्षों के लिए के जलने से दुर्गन्ध उठती है)

छन्द—भुजंग प्रयात।
अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चली भागि चोहूं दिसा राजरानी।
मिली ज्वाल-माला फिरैं दुःखदानी॥
मनो ईस बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायाक के संग डोलैं॥६५॥

शब्दार्थ—राजरानी=रावण की पत्नियां। लोल=चपल जायान=राक्षसों की स्त्रियां।

भावार्थ—कवि वर्णन करता है कि अग्नि की लपटों से बचने रावण की स्त्रियां चारों ओर भागने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु जिस जाती हैं, उधर ही उन्हें दुःख देने वाली आग की लपटें मिलती हैं। देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो महादेव के लाल और चंचल बा समूह सब राक्षसियों के पीछे लगा फिर रहा हो।

छन्द—भुजंग प्रयात।
अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—लंक लगाइ दई हनुमन्त विमान बचे अति उच्चरुची हैं

पावक में उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी-पानी दुखी ह्वै ॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै ।
गंग हजार मुखी गुनि केसो गिरा मिली मानो अपारमुखी ह्वै ॥९६॥

शब्दार्थ—लगाइ दई=आग लगादी । गुनि=समझकर । गिरा=
स्वती ।

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि लंका मे जब हनुमानजी ने आग
ादी तब आग की लपटें इतनी ऊंची उठी कि देवताओं के विमानों को, जो
ले ही काफी ऊंचाई पर उड़ते हैं, और भी अधिक ऊंचाई पर उड़ना पड़ा,
 वे जलने से बच सके, नहीं तो वे भी जल जाते । भवनों में जड़ी हुई अनेक
ार की बहुमूल्य मणियां (हीरे, मोती, पन्ने आदि) अत्यधिक ताप पाकर
र-उधर उछट कर गिरने लगीं तथा रावण की रानियां दुखी होकर पानी-
नी चिल्लाने लगीं । इस अग्निकाड का प्रभाव यहां तक हुआ कि लंकापुरी के
स्त भवन जो सोने के बने थे, पिघल गये और उनका सोना द्रव रूप में
संख्य धाराओं में बह कर समुद्र मे जा गिरा । केशवदास कहते हैं कि यह
य ऐसा मालूम पड़ता था मानो गंगा को समुद्र में हजार धाराओं से मिलती
ई देखकर ईर्ष्यावश सरस्वती नदी असख्य धाराओं से युक्त होकर समुद्र में
ल रही-हो ।

विशेष—(क) सरस्वती के जल का रंग पीला माना जाता है ।
(ख) समुद्र सब नदियों का पति है (इसलिए वह नदीपति भी कहलाता है । यहां गंगा और सरस्वती के बीच ईर्ष्या का कारण सपत्नीत्व है ।
(ग) इस छन्द में केशव की कल्पना अति सुन्दर बन पड़ी है ।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—हनुमत लाइ लंक सब, बच्यो विभीषण धाम ।
ज्यों अवनोदय बेर में पंकज पूरब याम ॥९७॥

भावार्थ—हनुमान ने सारी लंका में आग लगादी, सब जल गये, केवल
एक विभीषण का घर बचा । वह ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्योदय-बेला की
प्रथम प्रहर में कमल प्रफुल्लित होकर शोभा दे रहा हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—कहै केशोदास तुम सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरी अबहिं सेन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आस-पास,
दिसि-दिसि बरसा ज्यों बलनि बल दलति है ॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गज—
राज मृग मृगराज राजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आय जात,
पुरइन को सो पात पुहुमी हिलति है ॥३॥

शब्दार्थ—पृथ्वी और आकाश दोनों। बलति है=बल अति है (वर्षा ों से अति बली है और राम की सेना वानरों से अति बली है)। पन्नग=सर्प, बड़े अजगर। पतंग=पक्षी। राजिनि=पंक्ति, समूह। दलति है=पीस लती है। पय=पानी। पुहुमी=पृथ्वी।

भावार्थ—राम की वानर और रीछों की सेना को देखकर सुग्रीव ता है—हे राजा रामचन्द्र! जब आपकी सेना उछल कर चलती है, तब वी और आकाश दोनों सब ओर से धूल से ढक जाते हैं, चारो ओर ऐसा ाई पड़ने लगता है मानो घन-समूह से, बली होकर वर्षा ही आगई हो आकाश में उछलते-कूदते चलते हुए वानर और रीछों के समूह ऐसे जान पड़ते मानो वे बादलो के समूह ही हों)। आपकी सेना जब चलती है, तब मार्ग वह सर्पों, पक्षियों, वृक्षों, पहाड़ों, हाथियों, पशुओं और सिहों के समूहों को स डालती है। सेना के भार के कारण जहां-तहां पाताल का पानी पृथ्वी के पर आ जाता है और पृथ्वी कमलिनी के पत्ते की तरह हिलने लगती है।

अलंकार—उपमा।

छन्द—मनहरण कवित्त।

मूल—भार के उतारबे को अवतरे रामचन्द्र,
किधौं के सोदास मुनि भारत प्रबल दल।
टूटत हैं तरुवर, गिरे गन गिरिवर,
सूखे सब सरवर सरिता सकल जल ॥
उचकि चलत हरि, बचकनि इमकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल-थल।

शब्दार्थ—आसनगत=सिंहासन पर बैठा हुआ। मधुकर=भौंरा। करहाट=कमल की छतरी।

भावार्थ—(दूत के रूप में अंगद का रावण के पास जाना)—छलांग मारते ही अंगद वहां पहुंच गया जहां रावण सिंहासन पर बैठा हुआ था। रावण स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा हुआ ऐसा प्रतीत होता था मानो कमल की छतरी पर भौंरा बैठा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—पढ़ौ विरंचि ! मौन वेद, जीव ! सोर छंडिरे।
कुबेर ! बेर के कही, न यच्छ-भीर मंडिरे॥
दिनेश ! जाइ दूरि बैठु नारदादि संग ही।
न बोलु, चन्द ! मन्द-बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥२॥

शब्दार्थ—विरंचि=ब्रह्मा। जीव=वृहस्पति। मंडि रे=लगा।

भावार्थ—अंगद ने वहां पहुचकर देखा कि रावण का दरबान देवताओं को इस प्रकार डांट रहा है—हे ब्रह्मा ! धीरे-धीरे वेद पढ़ो। हे वृहस्पति ! शोरगुल न करो (चुप रहो)। हे कुबेर ! तुमसे कितनी बार कहा गया कि यहां तू यक्ष लोगों की भीड़ इकट्ठी न कर। हे सूर्य ! तुम दूर वहा जाकर बैठो जहां नारद आदि बैठे हुए हैं और हे मन्द-बुद्धि चन्द्रमा ! बकवाद मत कर, यह इन्द्र की सभा नहीं है।

अलंकार—उदात्त।

मूल—अंगद यों सुनि बानी। चित्त महारिस आनी॥
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे॥३॥

शब्दार्थ—अनैसे=अनिष्ट लोग (राक्षस), अन्नय से (नीति-मर्यादा का पालन न करते हुए।) बैसे=जाकर बैठ गया।

भावार्थ—(अंगद ने जब प्रतिहार को देवताओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार करते देखा, तब वह अपने को न रोक सका)—अंगद ने जब देवताओं को फटकारते हुए सुना, तब उसके चित्त में बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हो गया। अंगद राक्षसों को बलपूर्वक धकेल कर रावण की राज-सभा में जाकर बैठ गया। (अंगद को प्रतिहार की अशिष्टता के कारण इतना क्रोध आया कि उसने शिष्टाचार और नीति का भी ध्यान न रखा और वह बलपूर्वक राज-सभा में जा बैठा)।

रावण—'कौन हो, पठये सो कौन, ह्यां तुम्हें कह काम है ?'
जाति वानर लंकनायक-दूत, अंगद नाम है।
'कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही ?'
'लंक जारि सँहारि अक्ष गयो—सो बात वृथा कही॥'
'कौन के सुत ?' 'बालि के', 'वह कौन बालि ?' 'न ज
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।'
'है कहाँ वह वीर ?' अंगद 'देवलोक बताइयो।'
'क्यों गयो ?' 'रघुनाथ-बाण-बिमान बैठि सिधाइयो' ॥५॥
'लंकनायक को ?' विभीषण, देव-दूषण को दहै।'
'मोहि जीवत होइ क्यों ?' 'जग तोहि जीवित को कहै ?'
'मोहि को जग मारि है ?' 'दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।'
'कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिए ॥६॥

शब्दार्थ—लंकनायक-दूत - (विभीषण का दूत)। बालि=स्वर
देवदूषण = देवताओं को सताने वाला।

भावार्थ—(उपर्युक्त छन्द संख्या ४, ५ और ६ में रावण और अंग
का संवाद है) इनका अर्थ निम्न प्रकार है—

रावण—तुम कौन हो ? तुमको यहां किसने भेजा है ? क्या काम है ?'

अङ्गद—मैं जाति से वानर हूं, लंका के नायक विभीषण का दूत
और मेरा नाम अङ्गद है।

रावण—यह तो बताओ वह कौन था जिसको बांध कर हमने जिस
देह, पूंछ और सारा शरीर जला दिया था ?

अङ्गद—तो क्या उसका यहां आकर यह कहना सर्वथा असत्य है
उसने लंका को जला दिया और अक्षयकुमार को मार दि

रावण—तुम किसके पुत्र हो ?

अङ्गद—बालि के।

रावण—बालि कौन ? हम उसे नहीं जानते।

अङ्गद—वही बालि जो तुम्हें अपनी कांख में दबाकर सातों समुद्रों में
नहाता फिरा था।

रावण—वह अब कहां है ?

अङ्गद—देव-लोक को प्रस्थान कर गया।

रावण—कैसे चला गया (कैसे चला गया) ?

अङ्गद—रामचन्द्रजी के बाणरूपी विमान पर बैठकर चला गया।

रावण—लंक-नायक कौन है ?

अङ्गद—लंक-नायक विभीषण है जो देवताओं के शत्रु को रुलाता है।

रावण—मेरे जीते जी वह लंका का नायक (स्वामी) कैसे हो सकता है ?

अङ्गद—संसार में तुझे जीवित कहता ही कौन है ?

रावण—इस संसार में मुझे मार कौन सकता है ?

अङ्गद—तेरी दुर्बुद्धि ही तुझे मारेगी।

रावण—अच्छा वीर ! यह शीघ्र बतलाओ कि तुमको यहां किस काम के लिए भेजा गया है ?

छन्द—हरिगीतिका।

अलंकार—गूढोत्तर।

मूल—श्री रघुनाथ को बानर केशव आयो हो एकु न काहू हयो जू।
सागर को मद भारि, चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू।।
सीय निहारि संहारि कै राक्षस शोक अशोक बनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीके हि जात भयो जू।।७।।

शब्दार्थ—हयो=मारा। भारि=झाड़कर, नष्ट करके। चिकारि=[illegible] करके। त्रिकूट=वह पर्वत जिस पर लंकापुरी बसी थी। बिहारि गयो=[illegible] घूम-फिर गया। नीकेहि=सकुशल।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द में अङ्गद रावण को उसकी वास्तविक स्थिति का [illegible] कराकर उसको चेतावनी देता है कि उसे अहंकार त्यागकर रामचन्द्रजी के [illegible] झुक जाना चाहिए।

भावार्थ—रामचन्द्रजी के द्वारा भेजा गया एक वानर लंका में आया [illegible] तुम उसे न मार सके। तुमको अपने समुद्र पर घमंड था कि उसे लांघ कर [illegible] नहीं आ सकता, हनुमान ने उसे लांघ कर उसका घमंड चूर कर दिया। [illegible] वानर गर्जना-पूर्वक त्रिकूट भर में (तुम्हारी समस्त नगरी में) विहार कर [illegible]—यहां तक कि तुम्हारे महलों में घुसकर तुम्हारी सब पत्नियों और पुत्र-[illegible]ओं तक को देख गया। सीता का पता लगाकर, राक्षसों को मारकर, अशोक

शब्दार्थ—स्यों=सहित । सीव=सीमा । भ्रू-भंग ही=जरा टेढ़ी नजर ते हीं । हीं=मैं ।

भावार्थ—रावण अङ्गद को उत्तर देता है—सब लोक और लोकपालों त जिन-जिन वस्तुओं को ब्रह्मा ने रचा है, वे सब अपनी-अपनी सीमा में रहे हैं (सीमा का अतिक्रमण नहीं करते) । चार भुजा वाले विष्णु इन की रक्षा करते हैं—यह बात सत्य है क्योंकि वेद ऐसा कहते है । देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु आदि सहित इन सबको (ब्रह्मा की सम्पूर्ण सृष्टि को) शकर नी भृकुटी के जरा टेढ़ी करते ही नष्ट कर देते हैं । उन भगवान शकर को कर मैं अब किसके पैरो पर गिरू, आज तो मैं स्वयं इस अवस्था मे हूँ कि सारा संसार मेरे ही पैरों पर पड़ता है । रावण के कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान शंकर को छोड़कर अन्य किसी के पैरों पर नहीं पड़ सकता ।

मूल—'राम को काम कहा ?' 'रिपुजीतहि'
'कौन कबै रिपु जीत्यौ कहां ।'
'बालि बली', 'छल सों', 'भृगुनन्दन—
गर्व हर्‌यो,' 'द्विज दीन महा ।'
'छीन सो क्यों ?' 'छिति छत्र हर्‌यो,
बिन प्राणनि हैहयराज कियो ।'
'हैहय कौन ?' 'वहै बिसरयो जिन—
खेलत ही तोहि बाँधि लियो' ॥१०॥

शब्दार्थ—भृगुनन्दन=परशुराम । छिति छत्र हर्‌यो=पृथ्वी भर के सब त्रियों का संहार कर डाला । हैहयराज=सहस्रार्जुन ।

भावार्थ—प्रस्तुत छंद में रावण और अङ्गद का सवाद है—

रावण—राम क्या काम करता है ?

अंगद—शत्रुओं के जीतने का ।

रावण—राम ने कब और कहां किस शत्रु को जीता है ?

अंगद—राम ने बलवान बालि को जीता ।

रावण—धोखा देकर ।

अंगद—राम ने परशुराम के गर्व को दूर किया ।

रावण—परशुराम बेचारा गरीब ब्राह्मण है (उसको जीतने में कौनसी बहादुरी हुई ?)

तीसौं सपूतहि जाइ के बालि, अपूतन की पदवी पगुधारे।
अंगद संग लै मेरो सबैदल, आजुहि क्यों न हतै बपु मारै।।१२॥

शब्दार्थ—पुंज=समूह। पदु=अधिकार। जाइ कै=पैदा करके। हते=मारे। बपुमारे=अपने बाप के मारने वाले को।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द मे रावण भेद-नीति का आश्रय लेकर अगद को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है। वह अगद को समझाता है कि राम तुम्हारे पिता का हत्यारा है, इसलिए तुम्हे राम से बदला चुकाना चाहिए।

भावार्थ—रावण अगद से कहता है—हे अंगद ! नील, सुषेन, हनुमान और नल (केवल ये चार ही राम के अधिक समर्थक हैं)—इनको छोडकर शेष सब बानर तो तेरे ही साथ हैं। इसलिए तू इन आठो को (नील, सुषेन, हनुमान, नल, सुग्रीव, जामवन्त, लक्ष्मण और राम) आठ दिशाओं मे बलि दे दे और तू अपने पितृ-हन्ता से बदला ले और अपना अधिकार प्राप्त कर। तुझ सा सपूत पैदा करके बेचारा बाली निपुत्र की सी गति को प्राप्त हो रहा है। धिक्कार है तुझे को। अरे ! यदि तू अकेला डरता है तो मेरी सारी सेना लेजा और आज ही तू अपने बाप के मारने वाले को मार दे। (ऐसे शुभ कार्य में विलम्ब क्यो ?)

छन्द—मालती सवैया।

मूल—जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्यो, लोग कहैं तजि आस।।१३॥

भावार्थ—रावण अंगद को कहता है कि जो पुत्र ललकार कर अपने बाप के बैरी से बदला नहीं लेता, उसे लोग बिना किसी भय के जीवित को ही मृत समझते हैं।

मूल—इनको विलगुं न मानिए, कहि केशव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु क्यों असाधु त्यों साधु॥१४॥

भावार्थ—अगद रावण की सब बातें सुनकर उसको कहता है—जल, अग्नि, हवा और ईश्वर, इनके लिए असाधु और साधु समान हैं—ये भले और बुरे के साथ एक-सा व्यवहार करते हैं। इसलिए इनका आधे पल के लिए भी बुरा नही मानना चाहिए (तात्पर्य यह है कि राम को तुम मेरे बाप का शत्रु बतलाते हो, किन्तु यह झूठ है, क्योंकि राम तो समदर्शी हैं, उनके लिए न कोई शत्रु है और न मित्र)।

न हो जायेंगे। काम के=हितैषी। काम न ऐहैं=काम नहीं आयेंगे। अन्तर=चित्त में। अन्तक-लोक=यमलोक।

भावार्थ—अंगद ने रावण को पुनः समझाया है। वह कहता है—हे रा। चेतकर, मैं हाथी, घोड़े, साथी, नौकर-चाकर, गांव और ठाम (स्थान) सब इसी संसार में नष्ट हो जायेंगे। इसी प्रकार माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री आदि कभी भी तेरा साथ न देंगे। केशवदास कहते हैं कि अपने ो (काम के) केवल एक राम हैं, सो तू उनको भुलाए हुए है। उसे र अन्य सब बेकार हैं, इनसे कुछ भी भलाई नहीं होने की। इसलिए तू भी चेत जा। तू अपने चित्त में भले प्रकार समझ ले कि यमपुरी को तुझे ा ही जाना पड़ेगा।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

मूल—डरे गाय विप्रै अनाथै जो भाजै।
पर द्रव्य छोड़ै पर स्त्रीहि लाजै॥
पर द्रोह जासों न होवै रती को।
सो कैसे लरै वेष कीन्हें जती को॥२२॥

भावार्थ—रावण अंगद से कहता है—जो गाय और ब्राह्मण से डरता (उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता), अनाथ को देखकर भागता है, (द्रव्य) को हस्तगत नहीं करता, पर-स्त्री के सामने लज्जित होकर मुख नीचा लेता है, जिससे रत्ती भर भी पर-द्रोह नहीं हो सकता, वह यती वेश-धारी मुझ से क्या लड़ सकता है ?

अलंकार—व्याजस्तुति।

छन्द—भुजंगप्रयात।

मूल—गेन्द करयो मैं खेल को, हरगिरि केशोदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥२३॥

शब्दार्थ—हरगिरि=कैलाश पर्वत। सहास=हसते-हसते।

भावार्थ—रावण अङ्गद से कहता है—मैंने कैलाश पर्वत को कई बार तरह उठा लिया है जैसे बच्चे खेल में गेन्द को उठा लेते हैं और मैंने उसे हंसते अपने मस्तक पर इस तरह उठा लिया है जैसे वह कमल हो।

अलंकार—उपमा।

मूल—जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।

भावार्थ—रावण अङ्गद से कहता है—मैं जप-तप करने वाले ब्राह्मणों शीघ्र ही मार डालूंगा, मैं उन देवताओं का जो राक्षसों से शत्रुता रखते हैं, र कर डालूंगा। मैंने यह संकल्प कर लिया है कि मैं राम को सीता न उंगा और समस्त भूमि को नर-वानर से रहित कर दूंगा (नर और र पृथ्वी पर रहने ही नहीं दूंगा)।

छन्द—वंशस्थ।

मूल—पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो हर को धनु को रे!
छत्र-विहीन करी छन में छिति गर्वहर्यो तिनके बल को रे!
पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे अजहूं धरको रे!
होइ नरायन हूं पै न ये गुन, कौन इहां नर बानर को रे।।२६।।

शब्दार्थ—पाहन=पत्थर, शिला। पुरैनि के पात=कमल के पत्ते। को=धड़का, शंका।

भावार्थ—अङ्गद रावण को राम की शक्ति से अवगत करा रहा है। ह कहता है कि जिसने पत्थर से सुन्दर स्त्री बना दी, महादेव के धनुष को र डाला और जिसने क्षण भर में पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित कर देने वाले परशु-म के बल के गर्व को भी हरण कर लिया और जिसके प्रभाव से पत्थर कमल पत्ते के समान पानी पर तैरने लगते हैं—ऐसे राम के विषय में क्या तुझे अब कुछ शंका है? ये कार्य ऐसे हैं जो नारायण से भी नहीं हो सकते, तू यहाँ -वानर की क्या बात करता है?

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

छन्द—मत्तगयन्द सवैया।

मूल—देहि अंगद राज तो कहं, मारि बानर राज को।
बांधि देहि विभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज को।।
पूंछ जारहिं अच्छ रिपु की, पाईं लागहि रुद्र के।
सीय को तब देहुं रामहि, पार जाहिं समुद्र के।।२७।।

शब्दार्थ—बानरराज=सुग्रीव। अच्छरिपु=हनुमान।

भावार्थ—(रावण अङ्गद से कहता है कि यदि राम मेरी इन श- पालन करने के लिए तैयार हो तो मैं राम से सन्धि कर सीता को लौटा रहा हूं।) हे अङ्गद! यदि राम सुग्रीव को मारकर तुझे राज्य दे दें, विभीषण बांधकर मेरे हवाले कर दें, समुद्र पर उन्होंने जो पुल बांधी है, उसे वे नष्ट

तजि मन वच कायक, सूर सहायक,
रघुनायक सों वचन कहे ॥१४॥

शब्दार्थ—रिस=रोस (यहाँ युद्ध से तात्पर्य है)। रिपुवन-खंडित=अनन्य जिनका रण-पांडित्य रिपु-बल द्वारा खंडित हो गया। सूर-सहायक=शूरवीरों के सहायता करने वाले (रामचन्द्रजी)।

भावार्थ—अब लक्ष्मण ने देखा कि रावण के सिर ज्यों ही काटे जाते है वे फिर से नये निकल आते हैं, तब अच्छे लक्षण वाले और विलक्षण गुण वाले लक्ष्मण ने रावण से युद्ध करना बन्द कर दिया। यद्यपि लक्ष्मण रण-कुशल हैं और उनमें सब वीरोचित गुण विद्यमान हैं, तथापि वे रिपु-बल से भग्न-मनोरथ होकर आश्चर्य करने लगे और मन वचन कर्म से रण-पांडित्य का अभिमान छोड़कर शूरवीरों के सच्चे सहायक रामचन्द्रजी के पास आकर इस प्रकार बोले।

छन्द—त्रिभंगी।

मूल—बाढ़ो रण गाजन केहुं न भाजन तन मन लाजन सब लायक।
सुनि श्री रघुनन्दन मुनिजन वन्दन दुष्ट-निकन्दन सुखदायक॥
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि सायक।
रावणहि न मारत देव पुकारत हैं अति आरत जग-नायक॥१५॥

भावार्थ—लक्ष्मण रावण के बारे में रामचन्द्रजी को कहते हैं—हे सब प्रकार से समर्थ रामजी! देखिए, यह रावण रण-भूमि में बड़ा-बड़ा गर्जन कर रहा है, वह किसी प्रकार भी (अथवा किसी के द्वारा भी) नहीं भगाया जाता, जिसको देखकर मैं तन-मन से लज्जित हो रहा हूं। हे मुनियों द्वारा वंदनीय, दुष्टों का संहार करने वाले तथा संतों को सुख देने वाले रामचन्द्र सुनिये, यह रावण न टाले टलता है और न मारे मरता है, मैं इसकी बराबरी करते-करते थक गया हूं। हे जग-नायक! आप रावण को क्यों नहीं मारते? सुनते नहीं कि सब देवता अति आतुर होकर पुकार रहे हैं।

छन्द—त्रिभंगी।

मूल—जेहि सर मधु मद मर्दि महासुर मर्दन कीन्हेउ।
मारेउ कर्कश नर्क शंख हति शंख जो लीन्हेउ॥
निष्कंटक सुर-कटक कर्यो कैटभ-वपु खंड्यो।
खर दूषण त्रिशिरा कबन्ध तरु खंड विहंड्यो॥

कुंभकरण जेहि संहर्यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बान प्रान दशकंठ के कंठ दसों खंडित करौं ॥१६॥

शब्दार्थ और टिप्पणियां—मधु, महासुर, नरक, शंख, कैटभ, खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध आदि राक्षसों के नाम हैं। ये समय-समय पर विष्णु के अवतारों द्वारा मारे गये हैं। तरु-खंड=सात ताल के वृक्ष जिनको रामचन्द्रजी ने सुग्रीव के कहने से एक ही बाण से बेध दिया था। कर्कश=कठोर। विहंड्यो=खंडित कर दिया।

भावार्थ—जब रामचन्द्रजी ने देखा कि रावण के बल-विक्रम से लक्ष्मण जैसे वीर भी घबरा रहे हैं, तब उन्होंने सांत्वना देते हुए लक्ष्मण से कहा—घबराओ मत। जिस बाण से मैंने मधु, कैटभ, महासुर आदि राक्षसों को मारा है, प्रतिज्ञा-वश उसी बाण से रावण का भी वध करूंगा। इसी कठोर बाण से मैंने नरक और शंख नामक राक्षसों का वध किया था। इस बाण की तेज धार से मैंने कैटभ के शरीर का खंडन किया था और दैत्यों के समूह का भय से मुक्त किया था। इसी बाण की नोक से मैंने खर, दूषण, त्रिशिरा, कबन्ध और सात ताल वृक्षों को बेध कर बाली का वध किया था। मैं अपनी प्रतिज्ञा से तनिक भी विचलित नहीं हूं। मैं इसी बाण से, जिससे कुंभकरण के प्राण हरण किये हैं, रावण के दस सिरों को भी खंडित करूंगा।

छन्द—छप्पय।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

मूल—रघुपति पठयो आसुही, असुहर बुद्धि निधान।
दस सिर दसहू दिसन को, बलि दै आयो बान ॥१७॥

शब्दार्थ—आशुही=शीघ्र ही। असुहर=प्राणों का हरने वाला।

भावार्थ—जब रावण राम से युद्ध-भूमि में जा भिड़ा, तब बुद्धि निधान राम ने शीघ्र ही एक प्राणहर बाण छोड़ा जो रावण के दसों सिर काटकर दसों दिशाओं में उनकी बलि देकर पुनः तरकस में आ गया।

मूल—सुरभारहि संयुत राकस को,
गए आप रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय शब्द समेतहि केशव।
राज विभीषण के सिर जाग्यो ॥
अप दानव नन्दिनि के मुख सों,

छन्द—उपेन्द्रवज्रा।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

मूल—आरक्त पत्रा शुभ चित्रपुत्री।
मनो विराजै, अति चारु वेशा॥
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभा सु मंडी।
गणेश भालस्थल-चन्द्ररेखा॥८॥

शब्दार्थ—आरक्तपत्रा=लाल बेल बूटा से सजाई हुई। चित्रपुत्री=गी। भालस्थल=ललाट।

भावार्थ—अग्नि की गोद में बैठी सीता ऐसी मालूम होती है मानो पत्तों से आच्छादित कोई पुतली सुन्दर वेश धारण किये विराज रही हो, या सम्पूर्ण सिन्दूर की प्रभा से मंडित गणेशजी के मस्तक पर विराजने वाली चन्द्र-कला हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

छंद—उपेन्द्रवज्रा।

मूल—है मणिदर्पण में प्रतिबिम्ब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति-सी तप-ते जन में मनो सिद्धि विनीता॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसे उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनन्दकंद हुताशन मध्य सवासन सीता॥९॥

शब्दार्थ—अभीता=भय रहित रमणी। शुभगीता=पवित्र। सवासन=वस्त्रों सहित। आनन्दकन्द=आनन्द बरसाने वाले। विनीता=नम्र। हुताशन=न।

भावार्थ—अग्नि के मध्य बैठी सीता इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो मणि-दर्पण में किसी का प्रतिबिम्ब हो, या किसी प्रेम में पूर्णतः निर्भीक स्त्री के हृदय में साक्षात् प्रीति ही मूर्तिमान होकर बैठी हो, या प्रताप के पुंज में साक्षात् कीर्ति ही हो अथवा तप के समूह के बीच कोई विनीत सिद्धि, अथवा जैसे केशव के हृदय में पवित्र राम-भक्ति सुशोभित होती है, वैसे ही सीता अग्नि में सवस्त्र विराज रही हैं (वस्त्र तक नहीं जलते)।

छंद—मत्तगयन्द सवैया।

अलंकार—उपमा से पुष्ट संदेह।

विशेष—केशव कितने प्रतिभाशाली हैं, किस प्रकार वे अप्रादवत् उर-

मूल—फागुहि निलज लोग देखिए । जुवा देवारी को लेखिए ।
नित उठ बेभोई मारिए । मेलज में कैहूँ हारिए ॥१०॥

शब्दार्थ—फागुहि = होली में । देवारी = दिवाली । बेभोई = लक्ष्य, निशाना । कैहूँ = किसी प्रकार ।

भावार्थ—राम के राज्य में कोई भी निर्लज्ज नहीं है, केवल होली के अवसर पर ही लोग निर्लज्ज बनते हैं । जुआ केवल दिवाली को ही खेला जाता है, अन्य किसी समय नहीं । राम के राज्य में कोई किसी को नहीं मारता, केवल निशानेबाजी में ही लक्ष्य-वेधन किया जाता है । वहां केवल खेल में हार है, अन्य किसी प्रकार से किसी की कोई हार नहीं होती !

अलंकार—परिसंख्या ।

मूल—भावै जहां विभिचारी, वैद्य रमै पर-नारी,
द्विजगन दंडधारी चोरी परपीर की ।
मानिनीन ही के मन मानियत मान-भंग,
सिन्धुहि उलंघि जाति कीरति शरीर की ॥
मूलै सो अधोगतिन पावत है केसोदास,
मीचु है सोहै वियोग, इच्छा गंगा-नीर की ॥
वन्ध्या वासनानि जानु विधवा सुवाटिकाई,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥११॥

शब्दार्थ—विभिचारी = (१) व्यभिचारी, लम्पट, परस्त्री-गामी (२) रसों के संचारी भाव । नारी = (१) स्त्री (२) नाड़ी । द्विज = ब्राह्मण, विद्यार्थी । मानिनीन = मान करने वाली नायिकाएं—वे स्त्रियां जो अपने पति के कारण वश रूठ कर एकांत में जा पड़ती हैं और फिर पति के मनाने पर बड़ी कठिनाई से राजी होती हैं । मान-भंग = रूठी हुई नायिका का राजी होना (मान का टूट जाना) (२) अपमान । वन्ध्या = (१) बांझ स्त्री (२) फल रहित । विधवा = (१) जिसका पति मर गया हो (२) धवा नामक वृक्ष से रहित । वासनानि = वासनाएं ।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि राम के राज्य में कोई भी व्यक्ति व्यभिचारी नहीं है, केवल भावों में ही व्यभिचारी (संचारी) भाव हैं । परस्त्री के साथ कोई रमण नहीं करता, केवल वैद्य ही रोग-निदान के समय दूसरे की नाड़ी को टटोलता है । राम के राज्य में दण्ड किसी को नहीं दिया जाता,

विशेष—चन्द्रमास में तिथि घटती बढ़ती रहती है। तिथि का [illegible]
तिथि का क्षय कहलाता है। (जैसे तृतीया के बाद चतुर्थी न आकर पञ्चमी
आना 'चतुर्थी का क्षय' कहलाता है।

मूल—लूटिबे के नाते पाप-पट्टनै लूटियतु,
तोरिबे को मोह-तरु तोरि डारियतु है।
घालिबे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिबे के नाते अघ-ओघ जारियतु है॥
बांधवे के नाते ताल बांधियतु केशोदास,
मारिबे के नाते तो दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है॥१४॥

शब्दार्थ—पाप-पट्टनै=पाप रूपी नगर को। मोह-तरु=मोह [illegible]
वृक्ष। घालिबे के नाते=नष्ट करने के लिए। अघ-ओघ=पाप-समूह। आन [illegible]
—पुनर्जन्म। ताल=तालाब, सरोवर।

भावार्थ—कवि केशवदास कहते हैं कि राम के राज्य में कोई किसी [illegible]
नहीं लूटता, केवल पाप रूपी नगरी को लूटा जाता है। तोड़ने के लि[illegible]
केवल मोह-रूपी वृक्ष को ही तोड़ा जाता है (सज्जनों से प्रेम नहीं [illegible]
जाता)। नष्ट करने के लिए केवल देवताओं का गर्व ही नष्ट किया जाता [illegible]
किसी व्यक्ति विशेष का कोई हानि नहीं पहुंचायी जाती। जलाने के लि[illegible]
केवल पाप का समूह जलाया जाता है, किसी का दिल नहीं जलाया जा[illegible]
केशव कहते हैं कि राम के राज्य में बांधने के निमित्त केवल तालाब ही [illegible]
जाते हैं, अन्य किसी को कोई नहीं बांधता (सब स्वतंत्र और मुक्त हैं)। [illegible]
कोई किसी को नहीं मारता, केवल दरिद्रता को मारा जाता है। राम के रा[illegible]
में यदि किसी को कुछ जीतना हुआ तो वह राम-नाम के बल पर संसार [illegible]
जीतता है और यदि हारना हुआ तो पुनर्जन्म ही हारा जाता है क्योंकि [illegible]
पुनर्जन्म नहीं होता (क्योंकि मुक्ति प्राप्त हो जाती है)।

छन्द—मनहरण कवित्त।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल—सबके कल्पद्रुम के बन हैं, सबके बर बारन गाजत हैं।
सबके घर शोभित देव सभा, सबके जय दुंदुभि बाजत हैं॥

मूल—बालक छाँडि कै छाँडि तुरंगम ।
कासों कहा करौं संगर-संगम ॥
ऊपर वीर, हिये करुना रस ।
वीरहि विप्र हने न कछू जस ॥१६॥

भावार्थ—लक्ष्मण लव से कहता है—हे बालक ! घोड़ा छोड़ दे। जैसे छोटे बालक से मैं कैसे संग्राम करूँ ? तुझे देख कर मेरे हृदय में क... के भाव जग रहे है (अथवा मेरे हृदय में वात्सल्य उत्पन्न हो गया है) और ... तुम ब्राह्मण हो, कोई भी वीर योद्धा ब्राह्मण का वध करके यश नहीं ... सकता।

मूल—बन्धु बात बड़ी न कही तुम थोरे।
लव सों न जुरो लवणासुर मारे॥
द्विज दोषन ही बल तासु महार्‌यो।
मर ही जो रह्यो सो कहा तुम मार्‌यो ॥१७॥

भावार्थ—सरल है।

विशेष—लवणासुर एक राक्षस था जिसके ऊपर ब्रह्म हत्या का ... था, जिसके दोष से वह शत्रुघ्न के द्वारा मारा गया था।

मूल—राम बन्धु बान तीन छोड़ियो त्रिशूल-से। ✓
भाल में बिशाल ताहि लागियो ते फूल से॥
गात कौन राज तात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तैं हत्यो जो नाम 'शत्रुहा' लियो ॥१८॥

भावार्थ—लव के मुख से यह सुनकर कि 'लवणासुर पहले ही ब्रह्म ... के पाप से मरा हुआ था, उसको क्या तुमने मार लिया।' शत्रुघ्न को क्रोध आ... और उन्होंने त्रिशूल के समान तीन भयंकर बाण छोड़े, किन्तु वे बाण लव... प्रशस्त भाल पर जाकर इस तरह लगे मानो वे फूल हों (लव के ऊपर उन... कोई असर नहीं हुआ)। तब लव ने ताना मारते हुए शत्रुघ्न को कहा—... राज-बन्धु ! क्या तुमने मेरे ऊपर वार किया था ? अथवा मेरी पूजा करने ... लिए तुमने मेरे शरीर पर फूल बरसाये थे। मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुमने कौ... से शत्रुओं का वध किया है जिसके कारण तुमने अपना नाम शत्रुघ्न र... छोड़ा है ?

अलंकार—उपमा, विकल्प, विधि।

शब्दार्थ—विराम=देरी, विलम्ब। बीर=भाई। विलुप्त हुवै=लुक-छिप कर। प्रदेव=राक्षस। द्वै=दो।

भावार्थ—यज्ञ स्थल में बैठे रामचन्द्रजी ने जब लक्ष्मण के आने में विलम्ब देखा, तब उन्होंने भरत से कहा—हे भाई! तुम जरा अपने चित्त में विचार करके तो देखो कि लक्ष्मण तथा उनके साथ गये हुए अन्य शूरवीर अब तक क्यों नहीं लौटे? लक्ष्मणजी का सरोष देख कर तो तीनों लोक कांपते हैं, लुक-छिपकर किसी तरह अपने प्राण बचाते हैं, देवता और राक्षस भी उनसे भयभीत रहते हैं, फिर उन दो दीन बालकों की तो बात ही क्या है?

अलंकार—काव्यार्थापत्ति।

मूल—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहां यहि बार।
जाइ कै यह बात बर्णहु रक्षियो मुनिवार॥
हैं समर्थ सनाथ, वै असमर्थ और अनाथ।
देखिबे कहं ल्याइयो मुनिबाल उत्तम गाथ॥५६॥

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र। उत्तम गाथ=प्रसिद्ध वीर।

भावार्थ—रामचन्द्रजी लक्ष्मण के पास दूत भेजते हैं। वे दूत को आज्ञा देते हैं—हे दूत! तुम शीघ्र ही वहां पहुंचो जहां युद्ध भूमि में लक्ष्मण हैं और उनसे जाकर कहो कि वे उन मुनि-बालकों की रक्षा करें। क्योंकि लक्ष्मण सब प्रकार से समर्थ और शूरवीरों से युक्त हैं और वे बालक बालक हो इस तरह से असमर्थ और रक्षक-हीन। तुम लक्ष्मण से कहना कि वे उन बालकों को (बिना वध किये) यहां लावें जिससे मैं भी उन वीर बालकों को देखूं।

मूल—भगुल आइ गये तबही बहु। वीर पुकारत आरत रक्षहु॥
वै बहु भांतिन सैन संहारत। लक्ष्मण वौ तिनकों नहि मारत॥५७॥

शब्दार्थ—भगुल=युद्ध क्षेत्र से भाग कर आये हुए सैनिक। आरत=आर्त।

भावार्थ—रामचन्द्रजी दूत को आदेश देकर लक्ष्मण के पास भेज ही रहे थे कि इतने में युद्ध के मैदान से भागकर आये हुए शूरवीरों ने रामचन्द्रजी से कहा—युद्ध भूमि में वीर पीड़ित होकर पुकार रहे हैं 'रक्षा करो, रक्षा करो!' दोनों बालक सेना का बुरी तरह संहार कर रहे हैं और लक्ष्मणजी उनको नहीं मारते हैं।

मूल—बालक जानि तजै करुणा करि।

भावार्थ—भरत राम के समक्ष अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं—हम भी उस पवित्र तीर्थ में जाकर प्राणों को छोड़ेंगे और संगति के कारण लगे इस सम्पूर्ण दोष से मुक्त होंगे। और हे भगवन्! ये जो आपके सहायक वानर, राक्षस और रीछ हैं, इन्हें इस बात का अहंकार हो गया है कि इन्होंने रघुवंशियों की सहायता की है। उनके अहंकार को नष्ट करने के लिए ही कदाचित् आपने यह बात विचारी है, क्योंकि आप तो सदा अहंकार को [illegible] वाले हैं।

अलंकार—प्रथम छन्द में 'उल्लास', दूसरे में 'संदेह'।

मूल—क्रोध कै अति भरत अङ्गद संग संगर को चले।
जामवन्त चले विभीषण और वीर भले-भले॥
को गनै चतुरंग सैनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी॥१६॥

शब्दार्थ—संगर=युद्ध। रोदसी=पृथ्वी और आकाश दोनों। नृपता=राजाओं से। करी=हाथी।

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि अत्यन्त क्रोध-पूर्वक भरत अङ्गद को साथ लेकर युद्ध को चल पड़े। उनके साथ जामवन्त, विभीषण तथा अन्य चुने हुए वीर थे। चतुरंगिणी सेना की तो गणना ही कौन कर सकता है। राजा लोग इतने साथ में थे कि उनसे पृथ्वी और आकाश दोनों भर गये। [illegible] ने वहां पहुंचकर देखा कि पहाड़ के समान बड़े-बड़े हाथी समर-भूमि में [illegible]।

अलंकार—उपमा।

मूल—जामवन्त विलोकियो रण भीम भू हनुमन्त।
श्रोण की सरिता बही सु अनन्त रूप दुरन्त॥
यत्र-तत्र ध्वजा-पताका दीह देहनि भूप।
टूटि-टूटि परे मनो बहु बात वृक्ष अनूप॥१७॥

शब्दार्थ—रण-भू=रणभूमि। भीम=भयंकर। श्रोण=रक्त। सु अनन्त=अपार। दुरन्त=जिसका पार कठिनता से प्राप्त हो। दीह=[illegible]। बहु बात=बवंडर, आंधी।

भावार्थ—जामवन्त और हनुमान ने वहां जाकर देखा तो [illegible] कि उन्हें बड़ी भयंकर लगी। वहां रक्त की नदी बह रही थी जो अपार थी तथा अनन्त थी। दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। जहां-तहां ध्वजा-पताकाएं [illegible]

पराधीनता ऐसी ही होती है। बताओ, तुम्हारा पिता वह है जो मर गया अर्थात् बालि या वह जो जीवित है अर्थात् सुग्रीव। तुम किसका तिलोदक (तर्पण) करना चाहते हो—जीवित का या मृत का ?

विशेष—प्रस्तुत छंद में वक्रोक्ति और व्यंग्य दर्शनीय हैं।

मूल—अंगद हाथ गहे तरु जाई।
जान तहीं तिल सौं कटि सोई॥
पर्वत पुंज जिते उन मेले।
फूल के तूल ते बानन झेले॥१०१॥

भावार्थ—अंगद ने लव पर प्रहार करने के लिए जिस वृक्ष को कर हाथ में ले रखा था, उसको लव ने तिल के समान काट फेंका। अं जितनी पर्वत-शिलाओं का लव के ऊपर फेंका, लव ने उन सब को फू समान अपने बाणों पर झेल लिया।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—बानन बेधि रही सब देही।
बानर ते जो भये अब सेही॥
भूतल ते सर मारि उड़ायो।
खेल के कन्दुक को फल पायो॥१०२॥

भावार्थ—इसके बाद लव ने अपने बाणों से अंगद का सारा शरी बेध डाला। बाणों से बिध कर सेना के सब वानर ऐसे लगते थे मानों वे सेही (काटेदार एक जंगली पशु) हों। फिर अवसर पाकर लव ने एक ऐसा बाण मार कि अंगद आकाश में गेंद की तरह उड़ गया।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

मूल—सोहत है अध ऊरध ऐसे। होत बटा नट को नभ जैसे॥
जान कहूं न इतै उत पावै। गो बल, चित्त दसौं दिस धावै॥१०३॥

भावार्थ—लव के बाण द्वारा फेंका गया अंगद आकाश में नीचे ऊपर जाता हुआ इस तरह शोभा दे रहा है मानो वह नट का बटा नट का गोला) हो। वह निश्चित मार्ग को छोड़ कर इधर-उधर नहीं जाने पाता। उसकी सारी शक्ति नष्ट हो गई। वह दसों दिशाओं में सहायता प्राप्त करने के लिए अपनी चित्तवृत्ति को दौड़ाता है, (किन्तु उसको अपना कोई सहायक नजर नहीं आता)।

अलंकार—उदाहरण।

शब्दार्थ—सिगरी=सम्पूर्ण। कलि-मंकुस=वाल्मीकि ऋषि।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

मूल—कीजै न विडम्बन सन्तति सीते।
भावी न मिटै सु कहूं जग गीते॥
तू तो पतिदेवन की गुरु बेटी।
तेरो जग मृत्यु कहावति चेटी॥११५॥

शब्दार्थ—विडंबन=दुःख, पश्चाताप। सन्तति=पुत्री। भावी=होनहार। जगगीते=शुभ चरित्र वाली। पतिदेवन की=पतिव्रताओं की। चेटी=दासी।

भावार्थ—वाल्मीकि ने कुश से सब कुछ सुन एवं मन में सोच-समझकर सीता से कहा—हे बेटी सीते! अब तुम पश्चाताप न करो। हे उत्तम गाथा-वाली! होनहार होकर रहता है, किसी के टाले नहीं टलता। हे बेटी! तू तो सब पतिव्रताओं में पूज्य है। मृत्यु तो तेरी दासी है।

मूल—सिगरे रनमंडल माझ गये।
अवलोकत ही अति भीत भये॥
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम॥११६॥

भावार्थ—तदनन्तर सब मिल कर रण-क्षेत्र में गये। वहां के वीभत्स और भयानक दृश्य को देखकर सब भयभीत हो गये। दोनों बालकों के उस अद्भुत पराक्रम को देखकर ऋषि के मन में विभ्रम उत्पन्न हो गया।

मूल—सोनित सलिल नर-बानर सलिल चर,
गिरि बालिसुत, विष विभीषन डारे हैं।
चमर पताका बड़ी बड़वा अनल सम,
रोग-रिपु जामवन्त केसव विचारे हैं॥
बाजि सुरबाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित सेष रामचन्द्र केसव से,
जीति कै समर सिन्धु साँचे हू संवारे हैं॥११७॥

शब्दार्थ—सोनित=रक्त। सलिलचर=जल-जन्तु। गिरि=पहाड़ (यहाँ मैनाक पर्वत जो इन्द्र के भय से समुद्र में छिपा हुआ है)। रोगरिपु=धन्वन्तरि

बँध। सुरवाजि=इन्द्र का घोड़ा (उच्चैःश्रवा)। सुरगज=इन्द्र का ह (ऐरावत)। सबन्धु=भाई (शत्रुघ्न) सहित।

प्रसंग—प्रस्तुत छन्द में कवि केशवदास ने रण-भूमि का सागर से ... हो सुन्दर रूपक बाधा है। वह इस प्रकार है—

भावार्थ—इस समरांगण रूपी सिन्धु में रक्त ही जल है, नर-वानरों मृत शरीर ही जल-जन्तु हैं, बालिपुत्र अंगद ही मैनाक पर्वत है, विभीषण विष है (काला रंग होने के कारण)। कटकर गिरे हुए चमर और पताकाएं बाड़वानल हैं, जामवन्त धन्वन्तरि है, घोड़े अनेक उच्चैःश्रवा और हाथी अने ऐरावत हैं। अपने भाई शत्रुघ्न सहित भरत चन्द्रमा और अमृत हैं। लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी शेष-नाग सहित विष्णु हैं। वाल्मीकि ऋषि तथा अन्य उ स्थित लोगों ने जो रण-भूमि को देखने गये थे कहा) सचमुच इस युद्ध रूपं समुद्र को लव-कुश ने जीतकर इसकी शोभा बढ़ायी है।

छन्द—मनहरण कवित्त।

अलंकार—सांग रूपक।

विशेष—समुद्र-मंथन के समय समुद्र में से चौदह रत्न निकले थे, इस समर-भूमि रूपी समुद्र में भी कुछ रत्नों को गिनाया गया है।

मूल—मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम।
तो सब सैना जी उठे, होहि घरी न विराम ॥११८॥

शब्दार्थ—विराम=विलम्ब।

भावार्थ—सरल है। (यह सीता का कथन है)।

मूल—जीय उठी सब सैन सभागी।
केशव सोवत तें जनु जागी॥
स्यों सुत सीतहि लै सुखकारी।
राघव के मुनि पायन पारी ॥११९॥

शब्दार्थ—सभागी=भाग्यशाली। स्यों सुत सीतहि लै=पुत्रों और सीता को लेकर पायनपारी=चरणों में डाल दिया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—शुभ सुन्दरि सोदर पुत्र मिले जहीं।
वर्षा बरषै सुर फूलन की तहीं॥

बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत।
दिगपाल-गयन्दन के गन लाजत ॥१२०॥

शब्दार्थ—दिवि=स्वर्ग में। दिगपाल-गयन्दन=दिशाओं के हाथी।

भावार्थ—जब सुन्दरी सीता तथा दानों सहोदर (लव और कुश) पुत्र आकर रामचन्द्रजी के चरणों में गिरे, तब देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की तथा स्वर्ग में दुंदुभी बजने लगी। दुंदुभी के घोर शब्द को सुनकर दिग्गज भी लज्जित हो गये।

अलंकार—ललितोपमा।

मूल—सुन्दरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि बाल्मीकिहि दीह दुःख नसाइ॥
राम धाम चले भले यस लोक-लोक बढ़ाइ।
भांति-भांति सुदेश केशव दुन्दुभीन बजाइ॥१२१॥

भावार्थ—राम सेना सहित अयोध्या नगरी में प्रवेश कर रहे हैं, उस समय का वर्णन करते हुए केशवदास कहते हैं—सीताजी, दोनों पुत्र लव और कुश तथा अपने भाइयों के साथ तथा अश्वमेध यज्ञ के अश्व को लेकर और साथ ही दुःख दमन करने वाले मुनि वाल्मीकि को संग लेकर रामचन्द्रजी ने अयोध्या नगरी में प्रवेश किया। इस प्रकार रामचन्द्रजी ने सम्पूर्ण समस्याओं और दुःखों को नष्ट कर लोक-लोकान्तर में अपना यश फैलाया। जब राम ने अयोध्या नगरी में प्रवेश किया तब वहां स्थान-स्थान पर दुंदुभी बजने लगी।

अलंकार—अनुप्रास।

मूल—भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चौर ढारत है दुवौ दिसि पुत्र उत्तम गात॥
छत्र है कर इन्द्र के शुभ सोभिजै बहु भेद।
मत्त दंति चढ़े पढ़े जय शब्द देव सुवेद॥१२२॥

भावार्थ—अयोध्यापुरी में राजा रामचन्द्रजी की सवारी निकल रही है, इसका वर्णन केशव इस प्रकार करते हैं—

रामचन्द्रजी मद-मस्त हाथी पर सवार हैं, तीनों भाई-भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आगे-आगे चल कर भीड़ को हटाते जाते हैं। सुन्दर शरीर वाले पराक्रमी पुत्र लव और कुश रामचन्द्रजी के ऊपर दोनों ओर चंवर डुला रहे हैं। अनेक प्रकार से सुशोभित छत्र इन्द्र के हाथ में है। देवता तथा राजा लोग रामचन्द्रजी की जय-जयकार कर रहे हैं।

केशव और केशव की रामचन्द्रिका पर प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—केशव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक लेख लिखिए।

सामान्य परिचय—केशवदास भक्तिकाल के अन्तिम तथा रीतिकाल के प्रारम्भिक कवि माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों तथा विद्वानों के मतानुसार इनका जन्म सं० १६१८ के लगभग माना जाता है। ये एक पंडित घराने में पैदा हुए थे। इनके पितामह, पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता सभी संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। इनके पिता श्री काशीनाथ द्वारा रचित 'शीघ्र बोध' उच्चवर्ण के हिन्दुओं के लिए आज भी अत्यन्त उपयोगी है। केशव इन्हीं काशीनाथ के मझले पुत्र थे। परम्परा से ही इस परिवार के विद्वान ओरछा नरेशों के यहाँ पुराण वाचक तथा प्रमुख सभासद् रहे थे। केशव भी तत्कालीन ओरछा नरेश महाराज इन्द्रजीत के दरबारी कवि थे। अपने पूर्वजों की तरह इन्हें संस्कृत का ज्ञान था। यह बात इनसे प्रमाणित होती है कि इन्होंने अनुवाद तो अवश्य किये किन्तु संस्कृत का कोई मौलिक ग्रन्थ इन्होंने नहीं लिखा। अस्तु !

व्यक्तित्व—हिन्दी साहित्य में महाकवि केशव एक प्रभावशाली व्यक्तित्व लेकर आये। उनकी दृष्टि जीवन और जगत के प्रति सतर्क थी तथा उनका दृष्टिकोण बड़ा ही उदार था। दरबारी कवि होने के कारण उनमें व्यवहार कुशलता तथा चातुर्य यथेष्ट मात्रा में थे, ऐसा उनकी रचनाओं के पढ़ने से ज्ञात होता है। राज दरबार में इनका प्रभाव एक प्रधान मन्त्री से कम नहीं था। ये अकबर के मुख्य सलाहकारों के साथ अभिन्न मित्रता का व्यवहार रखते थे। एक बार महाराज इन्द्रजीतसिंह (ओरछा नरेश) पर बादशाह ने इतना जुर्माना कर दिया था कि उसे चुका देना संभव नहीं था। केशव की दरबारी बीरबल से अभिन्न मित्रता थी, इसलिए उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप जुर्माना माफ होजाना केशव की व्यवहार कुशलता का श्रेष्ठ उदाहरण है। इनका अकबर के दरबारी रत्नों में से अनेक लोगों के साथ केशव की मित्रता तथा उनका व्यक्तिगत परिचय था। बीरबल, खानखाना और टोडरमल आदि उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

पनी रामचन्द्रिका में उन्होंने अंगद के मुख से रावण के लिए यह कहलवाया —

"पीठ चढ्यो पलना पलका पढ़ि, पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे !
चौक चढ्यो, चित्र सारि चढ्यो, गज बाजि चढ्यो गढ़ गर्व चढ्यो रे !
व्योम विमान चढ्यो ई रह्यो, कहि केशव सो कबहूं न पढ्यो रे !
चेतन नाहि रह्यो चढि चित्त सो, चाहत मूढ़ चिताहू चढ्यो रे !"

संसार की कोई वस्तु मनुष्य के साथ नहीं जाती, केवल उसका यश संसार में रहता है। उसे तो यमलोक में जाना ही पड़ता है। इसी आशय को लेकर लिखा हुआ उनका यह पद देखिए—

"हाथी न साथी न घोरे न चेरे, न गाऊं न ठाऊं कुठाऊं बिलै है।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ संग रै है॥
केशव काम को राम बिसारत और निकाम ते काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अन्तर, अंतक लोक अकेलोइ जै हैं!"

कृतित्व—इतिहास लेखकों तथा खोजों के अनुसार केशव की निम्नांकित रचनाओं का पता लगा है—(१) रसिक प्रिया (२) रामचन्द्रिका (३) कविप्रिया (४) नख शिख (५) रतन बावनी (६) वीरसिंह देव चरित (७) विज्ञान गीता (८) जहांगीर जस चन्द्रिका।

इनमें से रामचन्द्रिका इनका प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का आकार प्रकार तो प्रबन्ध काव्य जैसा है किन्तु कथा का प्रवाह प्रबन्ध काव्य जैसा नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी के पश्चात् रामकथा लेकर रामकाव्य लिखने वाले केशवदास ही हैं। किन्तु तुलसी के समान स्वान्त, सुखाय न लिख कर उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए ही मानो इस काव्य की रचना की थी। साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का हिन्दी साहित्य में बड़ा महत्व है। प्राचीन विद्वान इनके इस ग्रन्थ का बहुत आदर करते हैं। इसी ग्रन्थ के काव्य कौशल पर यह उक्ति कही गई प्रतीत होती है—

सूर सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

सूर और तुलसी के बाद उच्चकोटि के कवियों में केशव का नाम लिया जाता है। इनकी रामचन्द्रिका में वर्णित अंगद-रावण संवाद तथा अन्य संवाद इस बात के प्रमाण हैं कि इन्हें वाक्चातुर्य भी अच्छा प्राप्त था। रामचन्द्रिका

के समान इनका और कोई ग्रन्थ लोकप्रिय नहीं हुआ। कविप्रिया और रसिकप्रिया क्रमशः अलंकार और रस पर लिखे हुए ग्रन्थ हैं। इस विषय पर रचना पहले भी हुई थी, किन्तु विषय का सम्यक् निरूपण जैसा इनके द्वारा हुआ है वैसा पहले नहीं हुआ। 'कविप्रिया' में अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसी ग्रंथ के आधार पर विद्वान इन्हें आचार्य मानते हैं यद्यपि संस्कृत ग्रन्थों का पूर्णतया अनुसरण करके भी ये अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत नहीं कर सके किन्तु हिन्दी साहित्य में यह इस प्रकार का प्रथम प्रयास है, नई वस्तु है, इसलिए कविप्रिया तथा रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य के प्रथम लक्षण ग्रन्थ माने जाते हैं। इन दोनों ग्रन्थों की भाषा भी अन्य कार्यों की अपेक्षा सुथरी हुई है तथा कहीं कहीं सुन्दर काव्योचित कल्पना से भी काम लिया गया है।

'विज्ञान गीता' में कवि के दार्शनिक विचार प्रकट हुए हैं। इसमें उन्होंने अपने विचारों को काव्य का रूप देने का प्रयत्न किया है किन्तु उनमें इन्हें सफलता नहीं मिली है। 'रतनबावनी' में कुमार रतनसिंह की वीरता का वर्णन किया गया है। इसमें वीरता के वर्णन से वीर रस का परिपाक अच्छा हुआ है। शेष रचनाएं काव्यत्व की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ लेखकों ने उनकी और रचनाओं का भी उल्लेख किया है किन्तु उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ रामचन्द्रिका ही माना जाता है। उनके इस ग्रंथ के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि यह उनकी काव्यकला का श्रेष्ठ परिचायक ग्रन्थ है। इसमें छन्दों तथा अलंकारों की विविधता इस बात का द्योतक है कि वे एक अलंकारवादी कवि थे। अपनी अलंकारप्रियता के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है—

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरण सरस सुवृत्त,
भूषन बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त।"

केशव ने अपने काव्य में वर्णन, संवाद, चमत्कारपूर्ण उक्तियां, अलंकार-विधान, छन्दों की विविधता आदि पर विशेष ध्यान दिया है। इसलिए इनसे काव्य सौन्दर्य की उनसे आशा करना व्यर्थ है। केवल कौशल प्रदर्शन करना उनका लक्ष्य था। वर्णन तो उनके इतने चमत्कारपूर्ण हैं कि पाठक देखते ही रह जाता है। उनकी वर्णन शैली का उदाहरण देखिए—

"तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर,
मंजुल बंजुल लकुच बकुल कुल केर नारियर।

एला, ललित लवंग, संग पुंगीफल सोहै,
सारी शुककुल कलित, चित्त कोकिल अलि मोहै।"

अपने वर्णनों में ही उन्होंने अपनी कला का सुन्दर परिचय दिया है। [इ]न वर्णनों को छोड़कर 'रामचन्द्रिका' में और कुछ ढूंढना व्यर्थ है। अनेक [प्र]कार के छन्द, अलंकारों की भरमार तथा संवाद योजना का चातुर्य उनकी [क]विता के प्रमुख गुण हैं। केशव ने अपने समय तक के समस्त हिन्दी साहित्य [क]ी गतिविधि को देखकर मुख्य रूप से भाषा को साहित्य के योग्य बनाने का [प्र]यत्न किया, काव्य को विकसित एवं उन्नत करने की चेष्टा की, अनेक प्रकार [क]ी नूतन शैलियों को अपनाकर भावी साहित्यकारों के लिए एक अनुकरणीय [आ]दर्श की स्थापना की।

कुछ आलोचकों ने उन्हें हृदयहीन कहकर उनकी कविता को काव्यत्व [क]ी कोटि से नीचे की वस्तु कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"केशव [क]ो कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो [ए]क कवि में होनी चाहिए। यह समझ रखना चाहिए कि केशव केवल उक्ति-[वै]चित्र्य और शब्द क्रीड़ा के प्रेमी थे।" डा० श्यामसुन्दरदास ने इस कथन का [प्र]तिवाद इस प्रकार किया है—"केशवदास को हृदयहीन कहकर हम उनके प्रति [अ]न्याय करते हैं क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानी समझी हृदयहीनता है, फिर अनेक स्थलों पर उन्होंने पूर्ण सहृदय होने का परिचय दिया है।" इन कथनों से यह तो स्पष्ट है कि केशव एक प्रतिभाशाली आचार्य थे, उनके साहित्य में शास्त्रज्ञान की प्रधानता है, उन्होंने अपनी रचनाओं में पाण्डित्य-प्रदर्शन किया है।

प्रश्न २—केशव के आचार्यत्व, पाण्डित्य और उनकी बहुलता पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

हिन्दी साहित्य में केशव कवि के रूप में तो प्रख्यात हैं ही, किन्तु बहुत से विद्वान् उन्हें आचार्य कहना अधिक संगत ठहराते हैं। परम्परा के अनुसार नये सिद्धान्तों का निरूपण करने वाला विद्वान् साहित्य शास्त्र में आचार्य कहलाता है। कहा जाता है कि केशव ने हिन्दी साहित्य में शास्त्रीय लक्षणों का सूत्रपात किया इस कारण उन्हें हिन्दी के प्रथम आचार्य कहा जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य में केशव से पूर्व अलंकार, रस आदि का शास्त्रीय ढंग से किसी ने विवेचन प्रस्तुत नहीं किया था। यह कार्य केशवदास ने किया। ये रीतिकाल

के सामने कुछ कठिनाइयाँ थी। पहली बात तो यह थी कि संस्कृत आचार्यों तरह उन्हें गद्य मे विवेचन प्रस्तुत करने की सुविधा प्राप्त न थी। इस य की काव्य भाषा ब्रज भाषा थी, जिसमें काव्योपयोगी लालित्य था, पूर्ण था किन्तु शास्त्रीय विवेचन के योग्य वह भाषा न थी। किन्तु अन्य किसी व के अभाव में केशव को इसी भाषा मे, और वह भी पद्य में लक्षणों का लेख करना पड़ा। वस्तुतः इसी कठिनाई के कारण अलंकारों तथा रसों का पण केशव उतनी गम्भीरता से नही कर पाये, जैसा कि एक आचार्य को ना चाहिए।

इसके साथ ही यह भी देख लेना चाहिए कि केशव ने परवर्ती संस्कृत आचार्यों के विकसित सिद्धान्तों का निरूपण न करके पूर्ववर्ती आचार्यों के कोण को अपनाया है। इस सम्बन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं ग्रन्थ के स्वरूप और मजमूनों के सम्बन्ध में हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत इन परवर्ती ग्रंथों (चन्द्रालोक, कुवलयानन्द, काव्यप्रकाश, साहित्य दर्पण दि) का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से संस्कृत साहित्य शास्त्र के हास की एक संक्षिप्त उद्धरणी हिन्दी मे होगई।……………साहित्य की शाखा क्रमशः बढ़ते-बढ़ते जिस स्थिति पर पहुँच गई थी उस स्थिति से सामग्री लेकर केशव ने उनके पूर्व की स्थिति से सामग्री ली। उन्होंने हिन्दी पाठकों काव्यांग निरूपण की उस पूर्वदशा का परिचय कराया जो भामह और भट के समय में थी; उस उत्तर दशा का नहीं, जो आनन्दवर्धनाचार्य, मम्मट र विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई।"

केशव इसी कारण से कई अलंकारों का अच्छी तरह निरूपण नहीं कर के। अपनी बुद्धि से उन्होंने जिन अलंकारों को माना है, उनकी बात तो भिन्न किन्तु प्रसिद्ध अलंकारों की परिभाषा भी वे कई स्थानों पर भ्रम-पूर्ण लिख ये हैं। अपनी बुद्धि का परिचय देने तथा पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिए ही न्होंने अपने तर्क दिये हैं तथा नये भेदों तथा उपभेदों की कल्पना की है। कुछ दाहरणों से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि केशव ने संस्कृत के आचार्यों ठीक तरह से अनुकरण नहीं किया। रूपक अलंकार के भेदों में उन्होंने एक पक-रूपक नामक भेद माना है किन्तु उनके उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि ह रूपक का ही उदाहरण है।

इसी प्रकार केशव ने स्वभावोक्ति अलंकार में यह मान लिया कि उसमें जो

'विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस'

संस्कृत साहित्य के काव्यों का अनुकरण करना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु अनुकरण में चमत्कार होना चाहिए। कोई भी अनुवादक तब तक सफल नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसकी रचना में भी चमत्कार न हो। केशव के अनुकरण में कहीं कहीं स्वाभाविकता नष्ट होगई है और उन्होंने केवल अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए भाषा और भावों की सुन्दरता को बिगाड़ा है। कहीं २ ऐसे शब्दों का प्रयोग कर दिया है जो उनके पाण्डित्य के प्रति शंका उत्पन्न कर देते हैं। इसी कारण उन्हें कुछ लोग "कठिन काव्य का प्रेत" कहकर सम्बोधित करते हैं। वस्तुतः अनुवाद करने के लिए तथा अपनी कल्पना का उसमें समन्वय करने के लिए उन्होंने कहीं कहीं कठिन शब्दों का प्रयोग किया है।

केशवदास संस्कृतज्ञ थे, इसलिए उनकी रचनाओं में दार्शनिक विचारों का बहुत सुन्दर विवेचन मिलता है। *'विज्ञान गीता'* नामक रचना में तो इनके विचार बहुत ही तर्क पूर्ण हैं तथा श्रीमद्भगवद् गीता के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु 'राम चन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में भी उनके दार्शनिक विचार दर्शनीय हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि केशव संस्कृत के पण्डित थे। चाहे उन्होंने परिस्थिति और प्रसंगवश कुछ भी परिवर्तन किया हो, भाषा में लालित्य के लोभी वे बन गये हों, किन्तु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनका ज्ञान पाण्डित्यपूर्ण था।

बहुज्ञता—केशव एक ऐसे कवि थे जिन्हें अनेक विषयों का शास्त्रीय ज्ञान तो था ही, किन्तु वे लौकिक ज्ञान से भी अनभिज्ञ नहीं थे। राज दरबार में रहने के कारण उन्हें राजनीतिक विषयों का पूर्ण ज्ञान था। किसी उलझनभरी समस्या का हल वे तुरन्त निकाल लेते थे। उनके पिता ज्योतिष के बहुत बड़े पंडित थे, इसलिए केशव उस ज्ञान से वंचित कैसे रह सकते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने ज्योतिष के ज्ञान का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त इनका सामान्य ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। किसी झगड़े में भाग लेना या अनावश्यक शक्ति खर्च करना उन्हें पसन्द न था। वे एक वैभव सम्पन्न व्यक्ति थे, उन्होंने राज्याश्रय प्राप्त करके संसार के विभिन्न अनुभव प्राप्त किये थे। काव्य शास्त्र के आचार्य होने के साथ ही वे एक अच्छे कवि, कुशल राज दरबारी तथा योग्य व्यक्ति थे। उनका नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

प्रति रंस रचै कुल 'केसव' श्री रघुनायक सों रन रीति रचैं,
देहि बार न बार भई बहुबारन सर्वहने, न गिने किरचैं।
तहँ कुम्भ फटे गजमोति कटे ते चलै बहि शोनित रोचि रचैं,
परि पूरन पूरि पनारन सों जनु पीक कपूरन की किरचैं।

केशव की 'रतन बावनी' में वीर और रौद्र रस की रचनाएं अधिक सुन्दर हैं किन्तु रामचन्द्रिका में भी उनका अभाव नहीं है।

सवैये और कवित्त आदि हिन्दी छन्दों की अपेक्षा उन्होंने संस्कृत के छन्दों में बहुत ही मनोहर रचनाएं की हैं। द्रुत विलम्बित का एक उदाहरण लीजिए—

उरसि अङ्गद लाज कछू गहो,
जनक घातक बात वृथा कहो।
सबल बानर राज तुम्हें करौ।

इसी प्रकार उनके द्वारा रचित एक शार्दूल विक्रीडित छन्द का सुन्दर उदाहरण देखिए जिसमें संस्कृत जैसी कोमल कान्त पदावली का प्रयोग किया गया है—

"सीता शोभन ब्याह उत्सव सभा, संभार संभावना,
तत्कार्य समय ध्यय मिथिलावासी जना शोभना,
राजा राज पुरोहितादि सुहृदा मंत्री महा मंत्रदा,
नाना देश समागता नृपगणा, पूज्या सदा सर्वदा।"

छन्द में लयात्मकता का अभाव उन्हें अभीष्ट न था। इसलिए उन्होंने इस बात का पूर्ण ध्यान रखा है कि छन्द की गति में लय पूर्णरूपेण साथ रहे। निम्नांकित सवैये में इसका उदाहरण देखिए—

"राम को काम कहा? रिपु जीतहि, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा?
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन गर्व हर्यो, द्विज दीन महा,
दीन सु क्यों? छिति छत्र हर्यो, बिन प्राणनि हैहयराज कियो,
हैहय कौन? वहै बिसर्यो जिन खेलत ही तोहि बाँध लियो।"

इस प्रकार के उदाहरणों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि केशव काव्य कला के मर्मज्ञ पारखी तो थे ही, किन्तु उन्हें छन्दों का भी ज्ञान था। प्रत्येक काण्ड में उन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग किया है तथा सारे समय में प्रचलित सभी छन्दों का प्रयोग यथा समय किया है। अङ्गद-रावण संवाद, राम परशुराम

मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय,
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइए।
दुर्गति दुर्जन ही जु कुटिल गति सरितन ही मे,
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में।

केशव ने कुल अलंकार ३७ माने हैं। उन्होने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की तरह कई अलंकारो के भेद आदि को नही माना है, उनके स्थान पर उन्होने स्वयं द्वारा किये गये भेदो का उल्लेख किया है। आचार्य दण्डी के अनुसार अलंकारो के भेदों का स्वीकार करके भी केशव ने अपनी कल्पना से कुछ नये भेदों का उल्लेख किया है। इन सब का वर्णन हमे केशव की 'कविप्रिया' मे देखने को मिलेगा। 'रामचन्द्रिका' के आधार पर तो हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि वे एक अलंकारवादी कवि थे, उन्होने अपने काव्य मे चमत्कार को अधिक महत्व दिया है। चाहे प्रसंग हर्ष के समय का हो या विषाद के समय का, वे अपना पाण्डित्य बताना नही भूले हैं। सुकुमारी सीता के प्रति मार्ग के ग्रामीणो द्वारा कही गई इस उक्ति मे सन्देह अलंकार का चमत्कार देखिए—

किधौं यह राजपुत्री, बरही बरी है किधौं,
उपदि बर्यो है यहि सोभा अभिरत हो।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसोदास,
जात तपोवन सिव बैर सुमिरन हो॥
किधौं मुनि शापहत, किधौं ब्रह्म दोषरत,
किधौं सिद्धि युत, सिद्ध परम विरत हो।
किधौं कोऊ ठग हो ठगोरी लीन्हे, किधौं तुम,
हर, हरि, श्री हो शिवा चाहत फिरत हो॥

सरयू नदी के मनोरम दृश्यो का वर्णन न करके केशव चमत्कार के चक्कर में फंसे हुए दिखाई देते हैं। विरोधाभास के फेर मे पड़कर उन्होने सरयू और गोदावरी नदियो का बड़ा ही अस्वाभाविक वर्णन किया है—एक उदाहरण देखिए—

विषमय यह गोदावरी, अमृतन के फल देत,
केशव जीवन हार को, दुःख अशेष हरलेत।

इस प्रकार केशव ने कई स्थानों पर अलंकारो का अनावश्यक प्रयोग किया है। पाण्डित्य व चमत्कार प्रदर्शन के फेर मे पड़कर उन्होने कई स्थानो पर

लेकर उन्होंने छन्द लिखे हैं। श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास, सन्देह, श्लेषमय उपमा, उत्प्रेक्षा इत्यादि अलंकारो की भरमार से केशव इनके बादशाह ही प्रतीत मालुम होते हैं, पर इसी कारण इनकी कविता सर्वसाधारण को पढ़ने और समझने की वस्तु नही रह गई, केवल अच्छे साहित्य मर्मज्ञ ही उसको कदर कर सकते हैं। छन्दो के शीघ्रातिशीघ्र हेर फेर के कारण रस-परिपाक में बड़ी बाधा पड़ती है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि केशव की कविता में रस परिपाक का प्रभाव है। करुण विरह के अवसरों पर केशव कहीं भी पाठक के नेत्रों से आंसू नहीं निकलवा सके।"

इसलिये यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि केशव की रचनाओं मे अलंकारिता तो है किन्तु सरलता और सरसता का अभाव है। चमत्कार को ही काव्य में प्रधान मानने के कारण उन्होंने सरलता की सदा उपेक्षा की है। संस्कृतज्ञ होने के कारण वे सरलता, स्वाभाविकता और सरसता आदि को उत्तम काव्य का अङ्ग नहीं मानते थे। इस कारण इनकी रचनाओं में कहीं भी कोई स्थल चमत्कार-पूर्णता से रहित नही है तथा इसी कारण कठिन होगया है। यदि कहीं कोई स्थल सरल हो भी तो यह समझना चाहिए कि या तो केशव वहां विवश थे, या वह स्थल उनकी दृष्टि मे नहीं आया। अलंकारो को काव्य में प्रमुखता देने के सम्बन्ध मे उन्होंने लिखा है—

'जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिनु न बिराजई कविता, बनिता मित्त।''

यदि केशव साधारणतया कहीं कहीं कठिन शब्दों का प्रयोग कर देते तो उन्हें कठिन काव्य का प्रेत नहीं कहा जाता। किन्तु उनकी समस्त रचनाओं मे ऐसे कठिन स्थल मिलते हैं जहां सरलता और स्वाभाविकता का नाम निशान भी नहीं है। श्री राम के विरह वर्णन का एक प्रसंग देखिए—

"दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बनकरी ज्यों कंपत है।
बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चन्द चितै चौगुनो चंपत है।
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यों तपत है।
भौर ज्यों भंवत बन, जोगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत है॥"

इस प्रकार उन्होंने साधारण प्रसंगों का भी क्लिष्ट भाषा में वर्णन किया है। पहले कहा जा चुका है कि उनके वर्णन पांडित्य प्रदर्शन के लिए किये हुए हैं। उनमें काव्य की सरसता तथा सौन्दर्य नहीं मिलता। भाषा के दृष्टिकोण से उनके काव्य को देखने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने अभिधा-शक्ति से अधिक काम लिया है। शब्दों के वाच्यार्थ पर अधिक ध्यान देने के कारण उनकी रचनाओं में अभिव्यक्ति के वैचित्र्य का अभाव है। उनके द्वारा वर्णित संवादों में इस चमत्कार का अभाव है। साधारणतया कहे हुए संवादों में चमत्कारहीनता का एक उदाहरण रावण-हनुमान संवाद के प्रसंग में देखिए—

सागर कैसे तर्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखौं,
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौं।

किन्तु कहीं कहीं पर संवादों में उक्ति बहुत चमत्कारपूर्ण होगई है। अङ्गद रावण-संवाद का एक उदाहरण देकर *व्यंग्यार्थ गर्भित भाषा का उदाहरण* दिया जाता है—

"कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि ! न जानिये।
कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहां वह ? वीर अङ्गद, देवलोक बताइयो,
क्यों गयो ? रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो।"

कहीं कहीं पर केशव ने बहुत सरल भाषा का प्रयोग किया है। किन्तु भाषा की सरलता का कारण यही रहा होगा कि वे किसी भाव विशेष को सरलतापूर्वक ही व्यक्त करना चाहते थे। उनकी भाषा में सरलता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है जिसके द्वारा भाव प्रदर्शन में बड़ी सुविधा हुई है—

"तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रमतें उठी सब रोइ।"

भाषा को सजाने के लिए उन्होंने मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। इस कारण भाषा सजीली हुई है। मुहावरों से पूर्ण एक सुन्दर सवैया देखिये—

हंसि बोलत ही जु हंसैं सब 'केसव' लाज भगावत लोक भगे।
कछु बात चलावत घेरु चलै मन आनत ही मनमत्थ जगै॥

इस प्रकार उन्होंने साधारण प्रसंगों का भी क्लिष्ट भाषा मे वर्णन किया है। पहले कहा जा चुका है कि उनके वर्णन पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए किये हुए हैं। उनमे काव्य की सरसता तथा सौन्दर्य नही मिलता। भाषा के दृष्टिकोण से उनके काव्य को देखने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने अभिधा-शक्ति से अधिक काम लिया है। शब्दो के वाच्यार्थ पर अधिक ध्यान देने के कारण उनकी रचनाओं मे अभिव्यक्ति के वैचित्र्य का अभाव है। उनके द्वारा वर्णित संवादो में इस चमत्कार का अभाव है। साधारणतया कहे हुए संवादों में चमत्कारहीनता का एक उदाहरण रावण-हनुमान संवाद के प्रसंग मे देखिए—

सागर कैसे तर्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहिं देखौं,
कैसे बंधाय ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौं।

किन्तु कहीं कहीं पर संवादों में उक्ति बहुत चमत्कारपूर्ण होगई है। अङ्गद रावण-संवाद का एक उदाहरण देकर व्यंग्यार्थ गर्भित भाषा का उद्धरण दिया जाता है—

"कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि ! न जानिये।
काख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह ? वीर अङ्गद, देवलोक बताइयो,
क्यों गयो ? रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो।"

कहीं कहीं पर केशव ने बहुत सरल भाषा का प्रयोग किया है। किन्तु भाषा की सरलता का कारण यही रहा होगा कि वे किसी भाव विशेष को सरलतापूर्वक ही व्यक्त करना चाहते थे। उनकी भाषा में सरलता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है जिसके द्वारा भाव प्रदर्शन में बड़ी सुविधा हुई है—

"तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रमतें उठी सब रोइ।"

भाषा को सजाने के लिए उन्होंने मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। इस कारण भाषा सजीली हुई है। मुहावरो से पूर्ण एक सुन्दर सवैया देखिये—

हँसि बोलत ही जु हँसै सब 'केसव' लाज भगावत लोक भगे।
कछु बात चलावत घैरु चलै मन आनत ही मनमत्थ जगै॥

प्रबन्ध काव्य का आवश्यक अङ्ग माना जाता है। इससे कथा के प्रवाह में बड़ी सहायता मिलती है। साथ ही महाकाव्य के संवादों की सुन्दर योजना उस रचना में नाटकीयता भर देती है जिससे वक्ता के कथन का अभिप्राय समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। केशव ने मुख्य स्थलों की कथा को ही संवादपूर्ण बनाया है। उनकी 'रामचन्द्रिका' के निम्नांकित संवाद मिलते हैं—

(१) रावण बाणासुर संवाद (२) राम परशुराम संवाद (३) परशुराम वामदेव संवाद (४) कैकेयी-भरत संवाद (५) रावण हनुमान संवाद (६) रावण-अङ्गद-संवाद और सीता-रावण संवाद। इनमें से अङ्गद रावण संवाद तथा रावण-बाण संवाद तो बहुत बड़े हैं, शेष छोटे हैं। इन संवादों के माध्यम से केशव के पात्रों का चरित्र अच्छी तरह से चित्रित हुआ है। चरित्रगत विशेषताओं के विकास के साथ उनके संवाद नाटकों को संक्षिप्त प्रवाह उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ हुए हैं। कई विस्तृत प्रसंगों का कथन संक्षेप में ही होगया है तथा कथा के विकासक्रम में एकरूपता तो नहीं, किन्तु सरसता अवश्य आ गई है। संवादों के द्वारा केशव के पात्रों की भाव व्यंजना भी स्पष्ट हुई है। रावण के वैभव और प्रचंड प्रभाव का परिचय उसके द्वारा देवताओं के प्रति कहे गये वचनों से मिलता है—

प्रतिहार—पढ़ौ बिरंचि मौन वेद, जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कहो न यक्ष भीर मंडि रे॥
दिनेस जाय दूरि बैठु नारदादि संग ही।
नबोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

संवादों की सुन्दर योजना के कारण ही केशव का काव्य साधारण धरातल से ऊँचे आगया है। उन्होंने अपने काव्य में संवाद योजना संस्कृत काव्यों के आधार पर की है, किन्तु कहीं कहीं उनमें मौलिकता भी है। रामचन्द्रिका के संवाद यथानुकूल क्रोध, उत्साह आदि भावों की सुन्दर व्यंजना करने वाले हैं जिनमें वाक्-पटुता के साथ व्यंग्य की प्रधानता के कारण काव्य में सजीवता आगई है। रावण बाण संवाद को केशव ने तुरंगम छन्द में कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है, देखिए—

बाण— बहु बदन जाके। विविध बचन ताके।
रावण—बहु भुजयुत जोई। सबल कहिय सोई।

संवाद योजना में केशव तुलसी से भी आगे बढ़ गये हैं। राम परशु-राम संवाद में कवि ने क्रोध का क्रमशः विकास दिखाया है। इस प्रकार के संवादों से ही यह प्रमाणित होता है कि केशव की संवाद-योजना 'हनुमन्नाटक' के भावों पर आधारित है। उनके इतने अच्छे संवाद लिखने का यह भी कारण था कि वे राजदरबार में रहने के कारण वाक्-पटु हो गये थे। उनका वार्तालाप राजा, मंत्री तथा अन्य अधिकारियों से प्रतिदिन हुआ करता था।

हिन्दी साहित्य में केशव से पूर्व जिन कवियों ने संवाद लिखे, उनमें स्वाभाविकता का अभाव रहा। किन्तु केशव के संवादों में स्वाभाविकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशव को संवाद योजना के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। यद्यपि उनकी प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी रचनाओं में संवाद सुन्दर बन पड़े हैं किन्तु 'रामचन्द्रिका' में मुख्य रूप से औरों की अपेक्षा महत्ता, स्वाभाविकता तथा मौलिकता से पूर्ण हैं। केशव के संवादों का चमत्कार राम परशुराम संवाद में देखने योग्य है। क्रोधी परशुराम श्रीराम से कहते हैं—

"तोरि सरासन संकर को, शुभ सीय स्वयंवर मांझ वरी,
ताते बढ़्यो अभिमान महा, मनमोरियो, नेकु न संक करी।"

इसका उत्तर श्रीराम अत्यन्त नम्र शब्दों में देते हैं:—

"सो अपराध परो हमसों, अब क्यों सुधरै तुम ही तो कहो!"

संवाद की स्वाभाविकता यह है कि पात्रानुकूल बात कही जाय जिसमें मर्यादा का पूरा ध्यान रखा जाय। जिस बात में मर्यादा भंग हो जाती है उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। केशव के संवादों में मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन किया गया है।

एक ही कविता में पात्रों की कई बार बात कहा देना केशव की रचना की मुख्य विशेषता है। राजनीति में तल्लीन रहने तथा सदा उसी वातावरण में रहने के कारण उनका अंगद-रावण संवाद बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। जिस समय श्रीराम की सेना का प्रमुख वीर अंगद रावण की सभा में अपने स्वामी का बखाने तथा श्रीराम के चरणों की शरण लेने की सलाह देता

देता है, उस समय की उनकी बातचीत राजनीति के दावपेच से पूर्ण है। इतना पराक्रमी वीर है कि जिसके भय से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कांपता है, इधर वीर अंगद भी कम वीर नहीं है। यह उस वीर बालि का पुत्र है जिसने रावण को छै मास तक अपनी कांख में रखा था। दोनों वीरों की वीरता के बारे में कोई सन्देह नहीं है, इसलिए बिना नाम दिए भी संवादों का पता चल जाता है कि कौन कह रहा है। प्रथम परिचय में ही रावण प्रश्न करता है—

कौन हो ! पठए सो कौनें, ह्यां तुम्हें कह काम है ?

अंगद—जाति बानर, लंकनायक दूत, अंगद नाम है।

रावण—कौन है वह ? बांधि के हम देह पूंछ सबै दही !

अंगद—लंक जारि संहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही ?

रावण फिर पूछता है—"कौन के सुत ?"

अंगद—"बालि के।"

रावण—वह कौन बालि ?

अंगद—न जानिये !

"कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये"

आगे एक ही पद्य में उनके प्रश्नोत्तर देखिए—

"है कहां वह वीर ?" "देवलोक सिधारियो।"

"क्यों गयो ?" रघुनाथ बान विमान बैठि सिधारियो।"

बातचीत में ही रावण अंगद को राजनीति के दाव-पेच दिखाकर अपने पक्ष में लेने का प्रयत्न करने लगता है-वह अंगद से कहता है—

"उरसि अंगद लाज कछु गहो, जनक घातक बात वृथा कहो।

सहित लक्ष्मण रामहिं संहरों, सकल बानर राज तुम्हें करों।"

किन्तु अंगद श्रीराम का परम विश्वासपात्र सैनिक था, वह रावण की खुशामदी बातों में कैसे आ सकता था ? इसलिए उसने रावण से कहा—

"न राव श्रीराम जहीं धरेंगे। अशेष माथे कटि भू परेंगे।

शिखा शिवा-स्वान गहें तुम्हारी। फिरें चहूं ओर निरें बिहारी।"

इस प्रकार कई स्थलों पर केशव ने अंगद और रावण के संवाद एक ही पद्य में कई बार कराए हैं। कोई भी कवि संवादों की केशव जैसी सुन्दरता नहीं ला सका है। निम्नाकित सवैये मे संवादों की सुन्दर योजना दर्शनीय है—

"राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं. कौन, कबै रिपु जीतयो कहा
बालि बली, छल सों. भृगुनंदन गर्ब हरयो, द्विजदीन महा।
दीन सु क्यों ? छिति छत्र हत्यो, बिन प्राणन. हैहय राज कियो,
हैहय कौन ? वहै, बिसरयो, जिन खेलत ही तोहिं बांध लियो।"

केशव ने अपने पात्रों का चरित्र उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर लिखा है। पात्रों के मुख से ही उनके स्वरूप का वर्णन कराया है। सम्पूर्ण रामचन्द्रिका उनकी सुन्दर संवाद योजना के उदाहरण हैं। संवादों में साहित्यिक क्षमता के साथ २ अभिनयात्मकता के भी दर्शन होते हैं। कथा के विकास में संवादों का पर्याप्त योग रहा है। केशव के संवाद हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि हैं। इनमें स्वाभाविकता तथा सजीवता के साथ संक्षिप्तता भी है। अच्छे संवादों की सभी विशेषताएं उनके संवादों में प्राप्त होती हैं। रोचकता उनके संवादों की मुख्य विशेषता है। संवादों के कारण ही उनके काव्य में सौन्दर्य आगया है, अन्यथा इनकी रचनाएं क्लिष्ट बनी रहती और इन्हें कठिन काव्य का प्रेत ठीक ही कहा जाता।

प्रश्न ६—'प्रकृति के अतुलित सौन्दर्य से प्रभावित होने के लिए जिस भावुकता की आवश्यकता है, उसका केशव में सर्वथा अभाव है'—समीक्षा कीजिए।

अथवा

रामचन्द्रिका के आधार पर केशव के प्रकृति चित्रण की विशेषताएं बतलाइए।

केशव रीतिकालीन कवियों की परम्परा में अग्रणी हैं। उन्हें कवि की अपेक्षा आचार्य कहना अधिक समीचीन है क्योंकि उन्होंने काव्य लक्षणों का विस्तृत वर्णन करके हिन्दी साहित्य में एक नई परम्परा को जन्म दिया है। रीतिकालीन कवियों में वे अलंकारवादी कवि थे। उनका 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से चाहे उसे सफल काव्य कहा जाय या नहीं, किन्तु वह एक श्रेष्ठ काव्य अवश्य है। महाकाव्य के समान उसमें प्रकृति चित्रण किया गया है। केशव का प्रकृति चित्रण अन्य कवियों के समान न होकर भिन्न प्रकार का है। वे एक दरबारी कवि थे, इसलिए उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण नहीं किया था। प्रकृति के सुरम्य वातावरण के सम्पर्क में न रहने के कारण उनकी प्रकृति

अनुभव नहीं के बराबर था। उनके प्रकृति-वर्णन की विशेषताओं को किस दृष्टिकोण से जाना जा सकता है—

प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत जिन वस्तुओं का वर्णन किया जाना चाहिए उनके नाम उन्होंने 'कविप्रिया' में इस प्रकार गिनाये हैं—

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के भूषण ऋतु सब काल॥

केशव ने उपर्युक्त सभी विषयों का यथास्थान वर्णन किया है। उनका प्रकृति चित्रण परम्परानुसार न होकर भिन्न प्रकार का है। वे काव्य में अलंकारों को प्रमुख स्थान देने वाले कवि थे। *उनका लक्ष्य काव्य में चमत्कार उत्पन्न करना था,* इसलिए उनके प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता भी सौन्दर्य प्रदर्शन मात्र रहा है। राज दरबारों में सरल वर्णनों का कोई मूल्य नहीं होता था इसलिए केशव प्रतिष्ठा प्राप्त करने व अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए प्रकृति के तत्वों का वर्णन करते थे। उनकी 'रामचन्द्रिका' में अलंकारों की मनोहर छटा दिखाने के लिए प्रकृति के विविध उपादानों का वर्णन किया गया प्रतीत होता है। ज्यों ही वे किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन प्रारम्भ करते थे, तो उनका अलंकारवादी दृष्टिकोण सामने आजाता था।

केशव ने रामकाव्यों की परम्परा के अनुसार वन का *वर्णन किया है* तथा अनेक प्राकृतिक स्थलों का मनोहर दृश्य उपस्थित किया है। सूर्योदय, प्रभात, पंचवटी, पम्पासर, पर्वत, कानन, ऋतुओं आदि का वर्णन विभिन्न शैलियों में किया है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि केशव की दृष्टि वस्तुवर्णन की ओर न होकर चमत्कार प्रदर्शन पर जाती थी, इसलिए उनके प्रकृति वर्णन स्वाभाविकता से बहुत दूर होगये हैं। संक्षेप में उनके प्रकृति वर्णन की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

(१) अलंकारपूर्ण-वर्णन—केशव का प्रकृति वर्णन प्रकृति के लिए न होकर अलंकार प्रदर्शन के लिए होगया है। उन्होंने सरयू और गोदावरी का वर्णन विरोधाभास के चमत्कार को प्रस्तुत करने के लिए किया है—

अति निपट कुटिल गति यदपि आप, तउ देत शुद्ध गति छुवत आप,
कछु, आपुन अघ अघगति चलन्त, फल पतितन कहँ ऊरध फलन्त।

उक्त पद सरयू नदी के वर्णन से पूर्ण है। इसी प्रकार गोदावरी नदी का वर्णन देखिए—

भौंहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है।
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नील कंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरषि हिय आई है।

प्रायः सभी प्रमुख दृश्यों के वर्णन करते समय तथा ऋतु वर्णन के समय कवि की दृष्टि चमत्कार प्रदर्शन की ओर ही रही है। अलंकार की लपेट में एक स्थान पर कवि ने सूर्य को बन्दर के समान मानकर वर्णन किया है—

चढ्यो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारिका कुसुम बिन॥

अलंकारप्रियता के कारण केशव प्रकृति के स्वाभाविक वर्णन में प्रायः असफल रहे हैं। शिशिर के वर्णन में श्लेष और सन्देह अलंकारों की छटा बाँधी है—

सिव को समाज किधौं केशव वसन्त है।
सबर समूह कैधौं ग्रीषम प्रवास है।
केसोदास सारदा कि सरद सुहाई है,
सीकर तुषार स्वेद सोहत है मल ऋतु,
कैधौं केसोदास प्रिया प्रीतम बिमुख को,
सिसिर की सोभा कैधौं आरि नारि नागरी।

वस्तु-वर्णन—केशव के प्रकृति वर्णन में वस्तु वर्णन की अधिकता है। उन्होंने नाम मात्र के लिए कहीं प्राकृतिक दृश्यों का उल्लेख किया है। शेष सम्पूर्ण वर्णन वस्तुओं के नाम गिनाने में ही पूर्ण हुए हैं। यद्यपि प्राकृतिक दृश्यों के साथ वस्तु-वर्णन की परम्परा हिन्दी साहित्य में जायसी आदि कवियों की रचनाओं में भी मिलती है, किन्तु केशव की रचनाओं में यह वर्णन भिन्न प्रकार का है। विश्वामित्र ऋषि के आश्रम का यह वर्णन देखिए—

तरु तालीस तमाल ताल हिताल मनोहर।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल केर नारियर।

बिसेस काल राति सो, कराल राति मानिये।
वियोग सोय को न काल लोकहार जानिये।।"

श्रीराम की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने कई स्थानों पर प्रकृति को उद्दीपन रूप में दिखाया है। विरह में शीतलता प्रदान करने वाली सभी वस्तुएं संताप देने लगती हैं। विरह का दुःख इतना बढ़ता जाता है कि कभी कभी तो जीवन की भी आशा नहीं रहती है। इसी प्रसंग का एक पद देखिए—

"कल हंस कलानिधि खंजन हंस, कछु दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन, पायन के अनुरूपक मै मन मानि लिये।
यहि काल कराल तें सोधि सबै, हठि के बरसा मिस दूरि किये,
अब धौं बिनु प्रान-प्रिया रहि है, कहि कौन हितू अवलंब हिये।"

इस प्रकार के स्थानों पर कवि ने अलंकारों की छटा का प्रदर्शन किया है तथा साथ ही उसकी रसात्मक वृत्ति का परिचय भी मिलता है। ऐसे कुछ स्थानों पर कवि ने सुन्दरता और सरसता के साथ प्रकृति का मानवीय भावों के आधार पर उद्दीपन रूप में चित्रण किया है।

अप्रस्तुत रूप में—केशव की काव्य रचना का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन था, किसी वस्तु का स्वाभाविक वर्णन करने का नहीं, इसलिए उनके काव्य में उनका प्रकृति के प्रति रागात्मक सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। किन्तु कहीं कहीं पर चमत्कार प्रदर्शन के साथ उनकी मौलिक उपमाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। इस प्रकार का एक वर्णन श्रीराम, लक्ष्मण आदि चारों भाइयों के जनकपुर में प्रविष्ट होने के समय का है जहाँ कि समुद्र और सरिता जैसे संगम की कवि उत्प्रेक्षा करता है जो कि स्वाभाविक होने के साथ सुन्दर भी है—

"जनि चारि बरात चहूं दिसि आई। नृप चारि चमू अगवानि पठाई।
जनु सागर को सरिता पगधारी। तिनके मिलिबे कहं बांह पसारी।"

केशव ने संस्कृत की अप्रस्तुत योजना को अपनाकर ग्रहण करके उसका चमत्कार दिखाया है। किन्तु यह बात अवश्य है कि उनका चमत्कार प्रदर्शन कहीं कहीं उनकी मौलिक उद्भावनाओं से पूर्ण है। उल्लेखनीय बात यह है कि उनका चमत्कार वर्णन भी केवल वर्णन मात्र ही रह जा सकता है। उनके काव्य-सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते।

प्रकृति-चि

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न विराजई, कविता बनिता मित्त।"

इस प्रवृत्ति के कारण कवि ने मार्मिक प्रसंगों में भी अपनी कला का प्रदर्शन किया है। वर्णन करते समय उनका झुकाव सर्वत्र सौन्दर्य प्रदर्शन की ओर हो गया है। उनके वर्णनों में उनका कवित्व प्रकट न होकर आचार्यत्व प्रकट होता है। हिन्दी में इनसे पूर्व लक्षण ग्रन्थों की परम्परा साधारणतया आरम्भ अवश्य हुई थी, किन्तु काव्यांगों का विस्तृत वर्णन जैसा केशव ने किया है वैसा पहले नहीं हुआ। इसलिए उन्हें कवि कहने की अपेक्षा आचार्य कहना अधिक युक्तिसंगत ठहरता है।

'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' जैसे ग्रन्थ इस बात का प्रमाण हैं कि केशव ने काव्यांगों का विशद विश्लेषण तथा वर्णन किया है। किन्तु उनके प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' को लेकर एक दिमागी कसरत आलोचकों तथा साहित्य प्रेमियों द्वारा हुई है। किसी ने उनको कठिन काव्य का प्रेत कहा तो किसी ने उनका कवि मानना भी स्वीकार नहीं किया है। 'रामचन्द्रिका' केशव का एक मात्र प्रबन्ध काव्य है। इसे प्रबन्ध काव्य या महाकाव्य कहा जाय या नहीं, इस सम्बन्ध में पर्याप्त समालोचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। तात्पर्य यही निकलता है कि केशव आचार्य पहले और कवि बाद में हैं। कवित्व की दृष्टि से हम उनकी केवल एक रचना पर विचार कर सकते हैं जिसमें उनकी चमत्कारप्रियता के दर्शन होते हैं और यह ज्ञात होता है कि उनके काव्य में कला पक्ष की प्रधानता है। भाव-पक्ष की दृष्टि से उनको हृदयहीन कहना ही उपयुक्त है। केशव के समय का वातावरण दरबारी कवियों का था जो अपने चमत्कार से राजाओं को प्रसन्न किया करते थे तथा अपना प्रभाव जमाते थे। वे भी इससे वंचित कैसे रह सकते थे? यही कारण है कि इनके महाकाव्य में भी केवल चमत्कार ही चमत्कार है, भावुकता नहीं।

महात्मा तुलसीदास की तरह श्रीराम की कथा को लेकर सम्भवतः उन्होंने एक प्रबन्ध काव्य की रचना का दृष्टिकोण लेकर ही 'रामचन्द्रिका' की रचना की होगी। किन्तु उनकी कलाप्रियता ने सर्वत्र ध्यान खींचा है। वे अपने आचार्यत्व और पाण्डित्य का सर्वत्र ध्यान रखते थे। प्रसंग चाहे, किसी प्रकार विषय का हो या वर्णन का हो उनकी सौन्दर्य दर्शन की प्रवृत्ति को नहीं भूल सके। मार्मिक स्थलों को जैसे इन्होंने समझा ही नहीं था, इसी कारण

पुरुषों की सहानुभूति दिखाना भूलकर सन्देहालंकार की छटा दिखाने में होगया है। सम्पूर्ण 'रामचन्द्रिका' में इसी प्रकार के वर्णनों की प्रचुरता इससे यह ज्ञात होता है कि केशव में कवि हृदय की कमी थी। एक सच्चे में पाठक को भावमग्न कर देने की जो क्षमता होनी चाहिए, उसका र मे प्रभाव दिखाई देता है, अन्यथा मार्मिक स्थलों का चलता सा वर्णन के वे छुट्टी नहीं लेते। कई प्रसंगों को तो उन्होंने छोड़ ही दिया है तथा कई गों का अनुचित वर्णन भी प्रस्तुत कर दिया है। हृदय की सच्ची प्रेरणा का में प्रभाव था।

प्रकृति वर्णन में उन्होंने मर्यादा का उल्लंघन करके ऐसे ऐसे उपमानों योजना की है, जो सर्वथा असंगत प्रतीत होती है। वर्षा वर्णन के समय होंने वर्षा को काली चण्डी का रूप दिया है, प्रातःकालीन सूर्य का वर्णन ते समय उन्होंने उसके अरुणाभ रूप को किसी कापालिक के खून से भरे हुए पर के समान बताया है। श्रीराम को उलूक की उपमा देकर उन्होंने कवि-ई का दिवाला ही निकाल दिया है, देखिए—

"वासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत"

इसमें सन्देह नहीं कि उनका दृष्टिकोण चमत्कारवादी था, इसलिए हृदयता और सरसता उनके काव्य में न आसकी। कलावाद की दृष्टि से हम हें सफल कह सकते हैं। उनका पाण्डित्य उनके इस काव्य में स्थान-स्थान पर बने को मिलता है, तथा उनकी कविता कामिनी अलंकारों के बोझ से लदी ई है। अलंकारों की योजना के प्रति उनके अधिक आग्रह के कारण कहीं कहीं ऐसा लगता है जैसे किसी निर्जीव प्रतिमा को अलंकारों से सुसज्जित कर या हो। निर्जीव इसलिए कहा गया है कि उन्होंने सुन्दर प्रसंगों के अवसर र भी थोथी कला का प्रदर्शन किया है। उसमें उन्हें अवश्य सफलता मिली। सरयू नदी के स्वाभाविक वर्णन को छोड़कर उन्होंने विरोधाभास का पीढ़ा इस प्रकार किया है, देखिए—

"अति निपट कुटिल गति यदपि आप, तउ देत शुद्ध गति छुवत आप,
कछु आपन अध अधगति चलन्त, फल पतितन् कहँ ऊरध अनन्त।"

सरयू नदी स्वयं टेढ़ी चाल से चलती हुई भी दूसरों को छूते ही सीधी ति (स्वर्ग) प्रदान करती है। इसी प्रकार गोदावरी नदी का यह वर्णन खिए—

मत्कार अवश्य होना चाहिए, यही मानकर उन्होंने अपनी कला का परिचय दिया है। दशरथ के यश वर्णन में उनका कौशल देखिए—

"विधि के समान हैं विमानी कृत राजहंस,
विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातौ दीप दीपियत,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है।
सागर उजागर की बहु बाहिनि को पति,
छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भागीरथ-पथ गामी गंगा कैसो जल है।

केशव को हृदयहीन कहने वाले आलोचकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उनकी कविता को शुष्क तथा रसहीन कहा है। यद्यपि कलात्मक चमत्कार े वे भी मानते थे और उन्होंने लिखा भी है "चमत्कार का प्रयोग भावुक वि भी करते हैं, पर किसी भाव की अनुभूति को तीव्र करने के लिए। जिस प या जिस मात्रा में भाव की स्थिति है, उसी रूप और उसी मात्रा में उसकी यंजना के लिए प्रायः कवियों में कुछ असामान्य ढंग पकड़ना पड़ता है।"

वास्तव में कलात्मक चमत्कार ऐसा होना चाहिए जो भावों की अभिव्यक्ति में भी सौन्दर्य उत्पन्न कर सके। स्थान-स्थान पर अकारण अपना ाण्डित्य प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति काव्य के मूल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में बाधा ालती है। काव्य में चमत्कार लाने के लिए प्रत्येक स्थान पर चमत्कार ढूंढना अस्वाभाविक होता है। इस सम्बन्ध में शुक्लजी ने लिखा है—

"उक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह सदा विचित्र, अद्भुत या लोकोत्तर हो—ऐसी हो जो सुनने में नहीं आया करती या जिसकी बड़ी दूर की सूझ होती है। ऐसी उक्ति जिसे सुनते ही मन किसी भाव या मार्मिक भावना में लीन न होकर एक बारगी कथन के अनूठे ढंग, वर्ण-विन्यास या पद प्रयोग की विलक्षणता, दूर की सूझ, कवि की चातुरी या निपुणता इत्यादि का विचार करने लगे वह काव्य नहीं, सूक्ति है।"

इस प्रकार उनके काव्य में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष को विशेष स्थान मिला है। आचार्य होने के कारण उनका ध्यान अलंकारों की ओर

(१) कथा का सम्बन्ध निर्वाह, (२) मार्मिक स्थलों की पहचान तथा (३) दृश्यों की स्थानगत विशेषता एवं प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन।

डा० श्यामसुन्दरदास ने 'रामचन्द्रिका' के प्रबन्ध काव्यत्व का विवेचन करते हुए लिखा है "इसका स्वरूप तो प्रबन्ध काव्य का सा है, परन्तु कथा-प्रवाह में वह प्रबन्ध सौष्ठव नहीं है जो एक प्रबंध काव्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस ग्रन्थ में छन्दों और अलंकारों को अत्यन्त महत्व दिया गया है, इसलिए भाव-व्यंजना में वह गम्भीरता नहीं आ पाई है जो उत्तम काव्य का प्राण है। चरित्र-चित्रण भी शृंखलाबद्ध नहीं है।"

केशव की रामचन्द्रिका में कथा के क्रम का अभाव है। उसमें प्रमुख स्थलों का विस्तृत वर्णन किया गया है किन्तु कथा का सम्बन्ध निर्वाह नहीं हो पाया है, केवल प्रमुख वर्णनों का संग्रह उसे कहा जा सकता है। छंदों के शीघ्र परिवर्तन के कारण रसाभिव्यक्ति नहीं हो सकी है तथा कथा के क्रम में भी बाधा पड़ी है। तुलसी ने जिन भावपूर्ण स्थलों का मरम वर्णन किया है, उसे या तो ये छोड़ गए हैं या उन पर संकेत मात्र करके आगे बढ़ गए हैं। जिन प्रसंगों का विस्तृत वर्णन करना चाहिए, उनका संक्षिप्त वर्णन करके छोड़ गए हैं। उन्होंने राम कथा का स्थान-स्थान पर संक्षेप किया है। राम-परशुराम संवाद के अवसर पर उन्होंने शिवजी के प्रकट होने की कल्पना की है—

"राम राम जब कोप करयो जू। लोक लोक भय भूरि भर्यो जू।
वामदेव तब आपुन आए। रामदेव दोऊ समझाए।"

कैकेयी का वरदान मांगना, एक प्रसंग रामचरितमानस में बड़ी मार्मिकता से दिया गया है। किन्तु केशव ने तुरन्त बातचीत कराकर प्रसंग को समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार राम-वनगमन, भरत मिलन, बालि वध तथा आगे के कई प्रसंगों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है जिससे पात्रों के चरित्र का पूर्ण विकास नहीं हो सका है। इसी कमी को लक्ष्य में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-"प्रबन्ध रचना के योग्य न तो केशव में अनुभूति ही थी न शक्ति। परम्परा से चले आते हुए कुछ नियत विषयों के (जैसे युद्ध, सेना की तैयारी, उपवन, राजदरबार के ठाटबाट तथा शृंगार और वीर रस) फुटकल वर्णन ही अलंकार की भरमार के साथ वे करना जानते थे। इसी से इन वर्णनों को वे हो जिस अवसर पर विस्तार दिए, करते चले गए हैं। वे वर्णन, वर्णन के लिए करते थे न कि प्रसंग या अवसर की अपेक्षा से। कहीं-कहीं तो

ा है कि कवि अलंकारों की छटा दिखाने में ही लगा हुआ है, उसे मार्मिक
े, पात्रों के चरित्रों आदि का ध्यान ही नहीं है। कवि ने कथा सम्बन्धी प्रत्येक
को संक्षिप्त किया है, कला प्रदर्शन का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा है।
 को 'रामचन्द्रिका' की कथा में कोई रस नहीं मिलता, वह केवल चमत्कार
 से प्रभावित होता है।

प्रश्न ६—महाकाव्य के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए केशव की रामचन्द्रिका का परीक्षण कीजिए।

अथवा

महाकाव्य के क्या लक्षण हैं? क्या इन लक्षणों के आधार पर रामचन्द्रिका को एक सफल महाकाव्य कह सकते हैं?

केशव की 'रामचन्द्रिका' प्रबन्ध काव्य नहीं है, किन्तु उसे महाकाव्य कहने के लिए भी कई बातों पर विचार करना पड़ता है। सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों पर ध्यान देना आवश्यक है। संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

१. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए।

२. उसका नायक कोई देवता या धीरोदात्त गुणों से भूषित कोई उच्च कुल का क्षत्रिय हो।

३. शृंगार, वीर और शान्त रसों में से किसी एक रस की प्रधानता हो तथा अन्य रस गौण रूप से रहें।

४. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या किसी सज्जन के चरित्र पर आश्रित हो।

५. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक को परिणाम माना हो।

६. आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वचन अथवा प्रतिपाद्य वस्तु की ओर संकेत हो और यत्र तत्र खलों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति भी सन्निहित हो।

७. सर्ग की रचना एक ही प्रकार के छन्द में हो किन्तु अन्त में कुछ छन्द बदले हुए हों। कई बार एक ही सर्ग में कई छन्दों का समावेश हो जाता है।

८. महाकाव्य का विस्तार पूरा हो। उसमें कम-से-कम आठ सर्ग हों जो न अधिक बड़े हों, न छोटे।

९. महाकाव्य में सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, संध्या, अंधकार, प्रभात, पर्वत, वन, समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का, युद्ध विवाह, यज्ञ, विरह आदि मानवीय घटनाओं का, विविध स्थानों का, उद्यान क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, मन्त्रणा, युद्ध में प्रस्थान करना आदि का यथा स्थान वर्णन होना चाहिए।

१०. महाकाव्य का नाम कवि, काव्य की कथा, नायक आदि के आधार पर हो तथा सर्गों के नाम भी उसकी घटना के अनुसार हों।

११. उसमे नाटक की सभी संधियां पाई जाती हों।

१२. महाकाव्य की शैली सरस और अलंकृत होनी चाहिए।

उपर्युक्त सभी लक्षण संस्कृत के 'काव्यादर्श' तथा 'साहित्य-दर्पण' आदि के आधार पर हैं। केशव संस्कृत के पंडित थे, इसलिए वे इन लक्षणों से भली भांति परिचित थे। यही कारण है कि उनकी 'रामचन्द्रिका' यद्यपि पूर्ण रूप से महाकाव्य नहीं कहा जा सकता, फिर भी इसका रूप महाकाव्य जैसा है। वे इसे एक महाकाव्य के रूप में ही लिखना चाहते थे किन्तु उनमें एक महाकवि जैसी अनुभूति तथा महाकाव्य की कला का अभाव था। श्रीचन्द्रबली पाण्डेय ने उनकी 'रामचन्द्रिका' के महाकाव्यत्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है—"उन्होंने महाकाव्य का पल्ला पकड़ा और एक एक दृश्य का वर्णन करना प्रारम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि महाकाव्य के सारे लक्षण रामचन्द्रिका मे उतर आये, उसकी आत्मा कहीं दूर ठिठक कर रह गई। केशव के तीन प्रकाश तो वर्णन मे निकल गये, जब चौथा प्रकाश आया तब उन्हें नाटक की सूझी और जयदेव का 'प्रसन्न राघव' उनकी आंखों में फिर गया। केशव वाल्मीकि से हटे और जयदेव के हो रहे। नहीं, नहीं, कहना चाहिए कि केशव जनक की रंगभूमि मे पहुँचे और जयदेव के हो रहे।"

केशव ने जिस स्वरूप और विचार को लेकर 'रामचन्द्रिका' को लिखना प्रारम्भ किया वह उन्हें याद न रहा। चमत्कार के प्रलोभन ने उनके भाव प्रदर्शन में बाधा डाली। महाकाव्य लिखने का विचार लेकर भी वे एक सफल महाकाव्य नहीं लिख पाये। उनमे एक महाकवि जैसी अनुभूति का अभाव था, इसलिए महाकाव्य के बाहरी ढंग मे ही वे रमे रहे, उसके अन्तर तक नहीं पहुँच सके। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इस सबंध में लिखा है कि—"'रामचंद्रिका' में महाकाव्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं, इसलिए वह महाकाव्य माना भी जाता है। परन्तु बाहरी लक्षण ही सब कुछ नहीं होते हैं। यह लक्षण

व्य के बाह्यावरण मात्र की सूचना देते हैं जिसका महत्व इसी में है कि अन्तरात्मा के आवरण का काम करता है, उसके स्थित रहने के लिए ार प्रस्तुत करता है। अन्तरात्मा से अलग उसका अपना कोई मूल्य नहीं महाकाव्य को महान् होने से पहले काव्य होना चाहिए। यदि काव्य नहीं उसकी महत्ता, उसका विस्तार कौड़ी के काम का भी नहीं हो सकता।"

वस्तुतः 'रामचन्द्रिका' को एक सफल महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। ण यह है कि उसमें महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों, जैसे सर्गबद्धता, मंगला-ण, इतिवृत्त संधियों तथा नामकरण को तो देखा जा सकता है किन्तु ये य के बाहरी रूप मात्र हैं, जहां इसके कथा तत्व और इसकी गम्भीरता का है, वे इसमें नहीं मिलते। महाकाव्यत्व की दृष्टि से इसमें अनेक दोष ये हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है—

प्रबन्ध निर्वाह की कमी—महाकाव्य में प्रबन्ध निर्वाह का स्थान मह-र्ण होता है किन्तु 'रामचन्द्रिका' में इसका अभाव है। इनसे पूर्व जिन यों ने महाकाव्यों की रचना की है वे पूर्ण सफल हुए हैं। केशव ने प्रारम्भ हाकाव्य की दृष्टि से ही किया, किन्तु चमत्कार प्रदर्शन के लोभ में फंसकर ुख्य वस्तु से बहुत दूर निकल गये। गोस्वामी तुलसी के 'रामचरित मानस' जायसी के 'पद्मावत' में कथा का सम्बन्ध निर्वाह सफल है। रामचन्द्रिका कवि ने इसका थोड़ा भी ध्यान नहीं रखा, इसलिए दशरथ मरण प्रसंग, यी-मंथरा संवाद जैसे आवश्यक स्थलों को भी उन्होंने छोड़ दिया है। अन-प्रसंग बनाने के कारण उनकी कथा का क्रम टूट गया है। रामकथा के गों में से किसी को सर्वथा छोड़कर कोई महाकाव्य नहीं लिखा जा सकता। केशव केवल चमत्कार के चक्कर में फंस गये और कथा के क्रम को निभाना भूल गये।

संवादों की अधिकता—'रामचन्द्रिका' में महाकाव्यत्व की दृष्टि से दूसरा दोष यह है कि इसमें संवाद प्रचुर मात्रा में आगये हैं। महाकाव्य में संवाद होने तो अवश्य चाहिए, किन्तु उनकी अधिकता प्रबन्ध निर्वाह में बाधा डालती है। केशव के संवाद व्यंग्यात्मक तथा फड़कती हुई भाषा में हैं एवं पात्रों के अनुकूल व्यंजना करने में वे सफल हैं किन्तु वे नाटकीयता के अधिक निकट आगये हैं। इस कारण महाकाव्य के क्रम में एक रुकावट सी दिखाई देती है।

मार्मिक स्थलों का अभाव—केशव की 'रामचन्द्रिका' में मार्मिक स्थलों

की कमी है। उन्होंने कथा के मार्मिक स्थलों को पहचाना ही नहीं है। इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल ने लिखा है—'प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चलता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।" पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र केशव को सहृदय तथा भावुक कवि नहीं मानते। उनका मत है कि केशव संस्कृत से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य को जमाना चाहते थे। जिस कथा को लेकर गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरित मानस' जैसा काव्य लिख सके, उसमें केशव भी लिख सकते थे किन्तु अलंकारों के दुराग्रह ने उनको ऐसा नहीं करने दिया। श्रीराम के वनवास के प्रसंग मे उन्होंने लिखा है—"किधौं मुनिशाप हत, किधौं ब्रह्मदोष रत, किधौं कोऊ ठग हो।" केवल चमत्कार के लिए मूल भाव से बहुत दूर होकर वे मार्मिक स्थलों की व्यंजना नहीं कर पाये हैं, जबकि गोस्वामी तुलसीदासजी ने ग्रामवधुओं तथा ग्रामीणों का भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। इस प्रकार की भावुकता तथा सरसता केशव की रचना में कहीं भी नहीं मिलती।

दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं की ओर ध्यान न देना—केशव की रामचन्द्रिका मे दृश्यों की स्थानगत विशेषता की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। अयोध्या के आसपास चित्रकूट तक जिन वृक्षों और लताओं का होना संभव नहीं है या जिनका अस्तित्व नहीं है, उनका वर्णन करना पूर्णतया अस्वाभाविक है। विश्वामित्र मुनि के आश्रम मे 'एला ललित लवंग पुंगीफल' का वर्णन करके उन्होंने दृश्यों की स्थानगत विशेषता का ध्यान नहीं रखा है। केवल विचित्र वर्णन करके वे प्रसन्न होगये हैं—इसका उन्होंने संकेत भी किया है—"अति प्रफुलित फलित सदा रहे केशवदास विचित्र वन"। पांडित्य प्रदर्शन की विशेष प्रवृत्ति के कारण केशव प्रकृति के सुरम्य स्थलों का सुन्दर वर्णन नहीं कर सके हैं। उन्होंने प्रकृति चित्रण में कई भूलें की हैं जैसे सूर्य की कापालिक का खून से भरा खप्पर बताना, वर्षा का कालिका के रूप मे चित्रण करना तथा पंचवटी को धूर्जटी बनाकर चमत्कार दिखाया गया है। अनुभूतियों के लिए केशव के हृदय में स्थान नहीं बन सका।

इस प्रकार केशव की 'रामचन्द्रिका' को एक सफल महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। केवल चमत्कार प्रदर्शन के कारण उसे महाकाव्य की कोटि में रखना भूल होगी। इसमें तो कवि ने केवल रूढ़ियों का निर्वाह मात्र किया है।

.., सेना संचालन, राज दरबार की तड़क भड़क, प्रेम आदि का वर्णन भी रोपित ही है। इन वर्णनों की न तो व्यंजना ही स्वाभाविक है और न ये वर्णन किसी की तरह स्वाभाविक ही बन पड़े हैं। इसलिए 'रामचन्द्रिका' को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। महाकाव्यत्व की दृष्टि से इसमें अनेक दोष हैं। इनके काव्य में रस योजना, अलंकार निरूपण तथा भाषा सम्बन्धी अनेक दोष जिनके कारण इसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न १०—'रामचन्द्रिका' की रस-व्यंजना तथा उसमें आये हुए मनोरम वर्णनों का उल्लेख करते हुए उनके काव्य पर अपनी सम्मति दीजिए।

केशव के काव्य 'रामचन्द्रिका' का अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता कि वे एक चमत्कारवादी कवि थे। रामकथा के कुछ प्रसंगों का वर्णन करके दरबारी लोगों पर अपना प्रभाव जमाना चाहते थे। उनमें चातुरी अधिक थी, रसता कम। एक बार अकबर के प्रसिद्ध सामन्त बीरबल ने केशव को "दै गनापन पावन ताहि दियो करतार दुई करतारी" पद पर खुश होकर ६ लाख रुपये दे डाले थे। किन्तु इसमें उनके चमत्कार का ही प्रभाव समझना चाहिए, रसता तो इस कविता में ढूंढने पर भी नहीं मिलती। इसका कारण यह था कि वे राजसी ठाठ में सदा घिरे रहते थे तथा उन्हें जो आश्रय मिला वह पूर्ण रूप से विलासमय था। यद्यपि उनकी रचनाओं में सरसता की कमी है किन्तु स्वयं एक रसिक व्यक्ति थे। अपनी वृद्धावस्था में भी वे युवक ही बने रहना चाहते थे, इसलिए एकबार कुछ युवतियों के 'बाबा' कहने पर वे चौंक उठे और तथा दोष अपने सफ़ेद बालों को देने लगे—

"केसव केसनि अस करी, बैरिहु जस न कराहिं,
चन्द्रवदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं।"

इस कथन में केशवदास का विशेष व्यक्तित्व झलकता है। वे अलंकार के उपासक तथा उसी की परम्परा को लेकर चले थे, इसलिए इनकी गणना सूर और तुलसी के बाद तीसरे स्थान पर की जाती है, किन्तु चमत्कारवादी होने के कारण उनकी रचनाओं में रस का अभाव था। अपनी अलंकारवादी प्रवृत्ति को उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त।"

[...]सार काव्य में रस का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। इस हीन कविता [...] कविता नहीं माना गया और शुष्क रचना को कभी ऊँचा पद नहीं मिला, [...]र केशव की चमत्कारपूर्ण रचना को सरस काव्य की कोटि में कैसे गिना [...]ता ? इस सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् तथा आलोचक डा० [श्य]ामसुन्दरदास के विचार इस प्रकार हैं—

"केशवदास ओरछा के राजा इन्द्रजीतसिंह के आश्रित दरबारी थे। [सं]स्कृत-साहित्य मर्मज्ञ पंडित परम्परा में उत्पन्न होने के कारण इनकी प्रवृत्ति [रीति] ग्रन्थों की ओर हुई थी। ये दण्डी और रुय्यक आदि अलंकार सम्प्रदाय [के] उन आचार्यों के मतानुयायी थे जो अलंकारों को ही काव्य की आत्मा स्वीकार [कर]ते थे। केशवदास की रचनाओं पर इस सम्प्रदाय की गहरी छाप दीख पड़ती [है]। रस परिपाक की ओर इनका ध्यान बहुत कम रहता है। कहीं कहीं अलं[का]रों के पीछे पड़कर ये इतनी जटिल और निरर्थक पद-रचना करते हैं कि [स]हृदयों को ऊब जाना पड़ता है। इनकी कृतियों के क्लिष्ट हो जाने का कारण [इन]का काव्य के वास्तविक ध्येय को न समझना ही है।"

इस कथन से यह ज्ञात होता है कि उक्त आलोचक के विचार केशव को अलंकारवादी मानने के हैं। किन्तु उन्होंने केशव को हिन्दी साहित्य का एक अच्छा कवि स्वीकार करते हुए तर्क दिया है कि कहीं कहीं केशव ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। उन्होंने 'चन्द्रवदनि', 'मृगलोचनि' आदि कथनों के आधार पर केशव को सहृदय कवि स्वीकार किया है। कुछ अन्य आलोचकों ने भी केशव को रसिक शिरोमणि और सहृदय कवि स्वीकार किया है किन्तु वास्तव में केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। जिस भावुकता और रसिकता की एक कवि को आवश्यकता होती है। केशव में उनका अभाव है। केवल चमत्कार प्रदर्शन ही काव्य का लक्षण नहीं होता है। चमत्कार होना तो अवश्य चाहिए किन्तु उसके साथ रचना में भावुकता और सरसता का होना अनिवार्य है। यदि किसी रचना में सरसता का अभाव हो तो उसे उत्तम काव्य की कोटि में नहीं गिना जा सकता। चमत्कारवाद के लिए आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—"चमत्कार का प्रयोग भावुक कवि भी करते हैं पर किसी भाव की अनुभूति को तीव्र करने के लिए जिस रूप या जिस मात्रा में भाव की स्थिति है उसी रूप और उसी मात्रा में उसकी व्यंजना के लिए प्रायः कवियों को कुछ असा-

विधान किया है। जहाँ करुण रस के प्रसंग हैं वहाँ कवि ने करुणरस की अभिव्यक्ति न करके भाषा की व्यंजना से ही काम लिया है। जिन स्थलों पर रस की अभिव्यक्ति सरलता से की जा सकती थी, वहाँ विनोदशीलता का ही परिचय दिया गया है। इसीलिए तुलसी की कविता में जिन रसों की योजना सरलता से हो पाई है उनमें से एक की व्यंजना भी केशव की 'रामचन्द्रिका' में नहीं पाई जाती। उनकी रस योजना सदोष है।

प्रश्न ११—चरित्र चित्रण में केशव की मौलिकता की विवेचना कीजिए और इस दिशा में उनकी तुलसीदास से तुलना कीजिए।

केशव ने तुलसीदासजी द्वारा वर्णित श्रीराम की कथा को लेकर 'रामचन्द्रिका' की रचना की है। किन्तु रामकथा का जो रूप परम्परा से चला आ रहा था उसमें केशव ने कुछ परिवर्तन किए हैं। परिवर्तन भी यदि चमत्कारपूर्ण हो तो ठीक हो सकता है, किन्तु प्रमुख रूप से जिन घटनाओं का उल्लेख पहले हो चुका था उनका विस्तार तथा कथन इस प्रकार हुआ था कि उसमें परिवर्तन करना ठीक नहीं रहता। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे विशाल ग्रन्थ की रचना करके रामकथा के सभी पात्रों का चरित्र चित्रण करने में सफलता प्राप्त की है। उनके आगे जिन भक्तिकालीन या रीतिकालीन कवियों ने उस कथा को लेकर काव्यों की रचना की वे काव्यत्व की दृष्टि से सफल नहीं कहे जा सकते, न उनके पात्रों का चरित्र चित्रण सफलता से हो पाया है।

'रामचन्द्रिका' केशव की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। किन्तु इसमें कथा का सम्बन्ध निर्वाह ठीक तरह से नहीं हो सका। जिस काव्य में कथा का क्रम ठीक प्रकार से नहीं चलता उसमें पात्रों का चरित्र चित्रण भी नहीं हो पाता है। प्रबन्ध काव्य ही ऐसी रचना होती है जिसमें पात्रों के चरित्र का विकास हो सकता है, मुक्तक या गीतिकाव्य में नहीं। इसीलिए तुलसी के मानस में कथा का सम्बन्ध निर्वाह ठीक तरह से हो सका है, केशव की 'रामचन्द्रिका' इस दृष्टि से सफल रचना नहीं कही जा सकती।

सर्वप्रथम हम यह देखेंगे कि राम कथा के प्रमुख पात्र कौन कौन से हैं—राम काव्य के प्रणेता वाल्मीकि और तुलसी के अनुसार प्रमुख पात्र निम्नलिखित हैं—राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, परशुराम, हनुमान, अंगद, रावण, कौशल्या, कैकेयी, दशरथ आदि। श्रीराम के चरित्र का जितना अधिक विकास हुआ है, उतना इस कथा के किसी अन्य पात्र का नहीं। तुलसी के राम अनन्त विस्-

व्यापी, दशरथ अजिर बिहारी, मन्द-मुसकारी हैं। उन्होंने श्रीराम का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। श्रीराम के स्वरूप के सम्बन्ध में तुलसीदास ने लिखा है—

सिया राम मय सब जग जानी,
करहु प्रणाम जोरि जुग पानी।

किन्तु यह उनके भक्त का स्वरूप है, वस्तुतः उन्होंने श्रीराम के मर्यादा-पुरुषोत्तम रूप को मानकर रामकथा लिखी है। तुलसी के राम पिता के आज्ञाकारी, भाइयों से अद्वितीय स्नेह रखने वाले, दुष्टों का संहार करने वाले तथा प्रजापालक हैं। नम्रता, शील, शौर्य तथा वीरता उनके आभूषण हैं। किन्तु केशव के राम सगुण न होकर निराकार हैं, परब्रह्म हैं। तुलसी ने यत्र-तत्र अपने राम की विनय शीलता का परिचय दिया है। सीता स्वयंवर के अवसर पर परशुराम के आ जाने तथा क्रोध करने पर वे नम्रतापूर्वक उनके प्रश्न का उत्तर देते हैं तथा अपने लघुभ्राता लक्ष्मण को व्यंग्योक्ति सुनाने से रोकते हैं। श्रीराम का विनीत उत्तर देखिये—

"नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा।"

शील व नम्रता तुलसी के राम में सर्वत्र मिलते हैं, वे अपनी मंझली माँ की इच्छा व पिता की आज्ञा से वन जाने को तैयार होते हैं, उन्हें राज्य का लोभ तनिक भी पथभ्रष्ट नहीं करता। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक भरत का होगा, तब तो वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इस कथा में कैकेयी का मंथरा द्वारा बहकाना, श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी आदि प्रसंगों का ...ष्ट वर्णन किया गया है, किन्तु केशव की दृष्टि इन प्रसंगों पर कम ठहरी है। ...की कथा का क्रम संकेत मात्र है इसलिए किसी प्रमुख पात्र के चरित्र का ...स नहीं हो सका है। श्रीराम के वन में जाने का वे तुरन्त वर्णन कर देते ...उनके राम माता पिता की आज्ञा लेना भी उचित नहीं मानते, बस सुनी-...बातों के आधार पर वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं—

"उठि चले बिपिन कहं सुनत राम। तजि तात मात तिय बंधु धाम।"

इतना ही नहीं, केशव के राम न तो माता के चरण स्पर्श करने जाते ...ता की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं, एकदम वन मार्ग में दिखाई देते ...—

"बिपिन मारग राम विराजहीं"

कथा के प्रसंगों का ठीक तरह से निर्वाह न होने के कारण केशव किसी भी पात्र का चरित्र चित्रण करने में सफल नहीं हुए हैं। न लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति का कोई प्रसंग है, न दशरथ विलाप का, न भरत के ननिहाल से लौटने का, तात्पर्य यह है कि उन्होंने इन विशिष्ट प्रसंगों का वर्णन ही नहीं किया है। श्रीराम के साथ लक्ष्मण, भरत और सीता का चरित्र भी वे ठीक तरह से नहीं उतार सके हैं। जगज्जनी सीता का जितना सुन्दर वर्णन कवि तुलसीदास ने किया है उसका शतांश भी केशव नहीं कर सके हैं। माता कौशल्या, सुमित्रा आदि का चरित्र तो केशव द्वारा बिगड़े हैं। श्रीराम द्वारा वनगमन के समय माता कौशल्या को पतिव्रत का उपदेश देना कितना असंगत है। किन्तु केशव तो चमत्कार के प्रलोभन में पड़े हुए थे, उन्हें माता और पुत्र की मर्यादा का ध्यान कहां से रहता?

केशव दरबारी कवि थे, इसलिए उन्होंने प्रत्येक पात्र के चरित्र में राजनीति को ठूंस दिया है। तुलसी के राम अपने लघुभ्राता भरत से अद्वितीय प्रेम रखते थे, उनके प्रेम का वर्णन चित्रकूट में भरत मिलन के समय पठनीय है। प्रत्येक श्रोता दोनों भ्राताओं के प्रेम को देखकर मंत्र मुग्ध हो उठता है। श्रीराम का भरत पर पूर्ण विश्वास है, उधर भरत श्रीराम को अपना स्वामी समझते हैं। किन्तु केशव ने श्रीराम के भरत के प्रति विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है—

> "धाम रहौ तुम लछमन राज की सेव करौ।
> मातनि के सुनि तात सुदीरघ दुःख हरौ।
> आय भरत्थ कहा धौं करैं जिय भाय गनौ।
> जो दुःख देयँ तो लै उर मों यह सीख सुनौ।"

तुलसी के राम चित्रकूट में भरत के आगमन के समय लक्ष्मण की भ्रान्ति को दूर करते हुए कहते हैं—

> "भरतहिं होहिं न राजमद, बिधि हरि हर पद पाइ,
> कबहुं कि कांजी सीकरनि, छीरसिन्धु बिनसाइ।"

कितना अन्तर है दोनों के विचारों में। विरोधी पात्रों का चरित्र चित्रण करने में केशव ने अवश्य ही चतुराई से काम लिया है। रावण राक्षस था, उसने सीता हरण करके महान् नीच कर्म किया था। जिस समय भगवान राम रावण